लेखक के दो शब्द

मैंने प्रस्तुत पत्र सन् १९४२-४५ के आगरा केन्द्रीय कारागार से अपने बन्दी-जीवन में अपने पुत्र शतीश बाबू के लिये लिखे थे। सन् १९४२ के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन में दमन दावानल की उग्र रश्मियाँ देश को द्रवीभूत कर रही थीं, सहस्रों देशभक्त बिना किसी मुकद्दमें चलाये कारागार में अनिश्चित काल के लिये ठूँस दिये गये थे, वे अपने पीछे अपने परिवार के महान उत्तर-दायित्वों को छोड़ आये थे।

शतीश बाबू का जन्म सन् १९२९ में हुआ था परन्तु उसके बाद ही आन्दोलन और जेल का ऐसा तांता लगा कि मैं उसकी समुचित शिक्षा-दीक्षा की ओर ध्यान न दे सका। इस बार जब सन् १९४२ में मैं अनिश्चित काल के लिये बन्द हो गया तो यह बात मुझे रह-रह कर काटने लगी कि मैं उसके प्रति अपने कर्तव्य की अवहेलना कर रहा हूं। मैंने जेल से ही पत्रों द्वारा उसका मार्ग प्रदर्शन करने का निश्चय किया—कठिनाई लिखने की सामग्री की थी—वह भी मिली तो फिर यह कठिनाई उपस्थित हुई कि समय-समय पर यह लिखे पत्र किस तरह बाहर पहुँचें। मैं नियम विरुद्ध 'तिकड़म' से इन पत्रों को बाहर नहीं भेजना चाहता था—प्रारम्भ में हम नज़रबन्दों का पत्र बाहर भेजना बिल्कुल बन्द था—दूसरे साल में जब पत्र भेजना खुला भी तो उनकी

निश्चित करो और तुमसे बड़े जो तुम्हें सलाह दें, उनकी अवहेलना करने की चेष्टा न करो।

मैं सोचता हूं कि यदि मैं इस समय तुम्हारे पास पहुँचकर तुम्हारी मदद नहीं कर सकता, तब भी मैं समय-समय पर तुम्हारी समस्याओं पर सोच सकता हूं और पत्रों द्वारा तुम्हें अपना दृष्टिकोण बता सकता हूं। इस तरह के पत्र लिखने से मेरा भी समुचित मनोरञ्जन होगा। आज जब मैं तुम्हारे सम्बन्ध में सोच रहा हूं और यह पंक्तियाँ लिख रहा हूं, तो मुझे ऐसा लगता है मानो तुम मेरे पास बैठे हो। बे-मौसम बरसात हो रही है और पानी की टप-टप मेरा ध्यान जंगलों के बाहर आकृष्ट करती है, हवा में भी कुछ सीलन है और मैं सोच रहा हूं कि आखिर हमारे जीवन का लक्ष्य क्या है?

हम जिस जीवन यात्रा पर निकले हैं, क्या वह सर्वथा लक्ष्यहीन है? क्या हमारे जीवन का लक्ष्य यही है कि हम पैदा हों, जीवन के दैनिक समस्याओं से संघर्ष करते हुए बड़े हों और फिर एक दिन उस अनन्त नींद में सो जायँ, जिससे फिर कोई नहीं उठता! विलासी जीवन बनाने, दूसरों पर रौब जमाने के लिये शान-शौकत की चीजें एकत्रित करने में ही क्या हमारे जीवन का लक्ष्य छिपा है? निस्सन्देह जीवन का लक्ष्य इससे कहीं अधिक ऊँचा और महान् है, विस्तृत और असीम।

हमारे जीवन का लक्ष्य महान् और उच्च होना चाहिये। तुमको यह विश्वास होना चाहिये कि ईश्वर ने तुम्हें महान् और उच्च

कार्य करने के लिये इस संसार में भेजा है। संसार में जितने उच्च एवम् महान् व्यक्ति हुए हैं, उनमें ऐसी कोई विशेष बात नहीं थी, जिसे तुम प्राप्त न कर सकते हो। संसार के अधिकांश महापुरुष अति साधारण परिस्थिति में उत्पन्न हुए हैं। विश्वविजयी अलक्षेन्द्र, नैपोलियन, चन्द्रगुप्त, महाराज रणजीतसिंह, हिन्दू-पति शिवाजी, जार्ज वाशिंगटन आदि साधारण परिस्थितियों में उत्पन्न हुए थे। इटली का मुसोलिनी एक लुहार के यहाँ पैदा हुआ था, हिटलर, जिसने एक बार समस्त विश्व को अपनी शक्ति से हिला दिया, एक साधारण सिपाही था और आधुनिक टर्की का निर्माता मुस्तफ़ा कमालपाशा, जिसने तुर्क जाति को रूढ़िवादिता और धार्मिक कट्टरता के बन्धन से निकाल कर स्वतन्त्र विचार पोषित करने की शक्ति दी, साधारण परिस्थितियों में उत्पन्न हुआ था। अमरीका के धन-कुबेर कारनेगी और फ़ोर्ड निर्धन माता पिताओं के यहाँ उत्पन्न हुए। चीन में प्रजातन्त्र शासन के जन्मदाता डाक्टर सनयातसेन और उसकी रक्षा के लिए जापान तक से टक्कर लेनेवाले चांगकाईशेक और चीन के साम्यवादी नेता माओ सब प्रारम्भ में साधारण मनुष्य थे।

आज हमारे देश के भी अनेक धनी परिवार-बिड़ला, डालमियाँ, वालचन्द हीराचन्द आदि कुछ समय पहिले साधारण व्यक्ति थे। दादाभाई नौरोजी बहुत गरीब माता-पिता के यहाँ पैदा हुए थे। लीडर के यशस्वी सम्पादक और एक बार युक्त प्रान्त के शिक्षा-सचिव श्री चिन्तामणि को युवावस्था में कोई सहायता प्राप्त नहीं थी।

आज विश्व के सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति महात्मा गान्धी यद्यपि विलायत से बैरिस्टरी पास करके आये थे परन्तु उनकी सफलता का यही कारण नहीं था। आज भी हमारे देश में क्या अनगिनती बैरिस्टर नहीं हैं, जिन्हें कोई महान् कार्य करना तो दूर रहा, जो अपने जीवन के निर्वाह के लिये समुचित साधनों को जुटा सकने में भी असमर्थ हुए हैं। भारतवर्ष में स्वयं महात्मा जी अपनी वकालत के पेशे में असफल रहे।

तुमने लन्दन के उस मेयर की कहानी तो सुनी होगी जो अपनी युवावस्था में बेकारी की फटी हालत में लन्दन के एक पार्क में सोने आया था। वह निराश्रय था, जीवन की निम्नतम आवश्यकताओं की पूर्ति करने में भी वह असफल रहा। वहाँ उसे कुछ ऐसा प्रतीत हुआ कि गिर्जे के घंटे की आवाज़ उससे यह कह रही है "टन....टन ....वैलिंगटन लार्ड मेयर आफ लन्दन।" यही वैलिंगटन आगे चल कर लन्दन का मेयर हुआ। आज दुनिया के सफल सम्पादक कभी सड़कों पर अखबार बेचने वाले लड़के थे। अनेक मिल-मालिक कभी मिलों में छोटे नौकर थे। अनेक वैज्ञानिक कभी होटलों में तश्तरियाँ साफ करते थे, और अनेक धनी अपने घर से लोटा डोर लेकर किस्मत आज़माने निकले थे।

विश्व के अनेक विद्वान् ऐसे हैं जिन्हें अपने शिक्षाकाल में पुस्तकें तक प्राप्त करने के साधन उपलब्ध नहीं थे। अब्राहम लिंकन, अमेरिका का महान् राष्ट्रपति, जिसकी मृत्यु पर कहा गया

था—"दुनिया में अब तक जितने महान् पुरुष पैदा हुए हैं, उनमें मनुष्यों का सबसे अधिक पूर्ण शासक यहाँ सो रहा है", एक बिसायतख़ाने की दुकान पर नौकर था। उसने ५० सेन्ट में एक कबाड़िये की दूकान से क़ानून की पुस्तकें खरीदीं। अपनी लगन और अमिट उत्साह से वह एक दिन अमेरिका का प्रेसीडेन्ट बना।

मेरा कहने का तात्पर्य यह है कि महान् मनुष्य अपनी परिस्थिति का स्वयं निर्माण करते हैं, परिस्थितियाँ उन्हें नहीं बनातीं। इसमें सन्देह नहीं कि जीवन की अच्छी परिस्थितियाँ मनुष्य के ऊँचे उठने में सहायक होती हैं लेकिन वह बाधक भी बन जाती हैं। यदि अनुकूल परिस्थितियाँ ही मानव को ऊँचा उठाने में सहायक हों तो संसार में जितने महान् व्यक्ति हुए हैं उनकी सन्तानें ऐसी ही महान् और उच्च होतीं; पर हम साधारणतया इसके विपरीत पाते हैं। अपने देश में ही देख लो, कितने महान् व्यक्तियों की सन्तान भी महान् हुईं। इसलिए एक एक युवक को यदि वह अनुकूल परिस्थिति में उत्पन्न हुआ है तो उसका उचित उपयोग करना चाहिये और यदि प्रतिकूल परिस्थिति में हुआ है तो उससे निरुत्साहित नहीं होना चाहिए।

इसमें सन्देह नहीं कि प्रत्येक युवक को अपने जीवन को महान् और उच्च बनाना चाहिए परन्तु महानता केवल अधिक सत्ता या धन प्राप्त करने में नहीं है। क्या हम केवल प्रसिद्ध सेनापति अलक्षेन्द्र और नेपोलियन या धन-कुबेर फोर्ड और बिड़ला को ही

सफल कह सकते हैं ? अन्य को नहीं जो इतनी शक्ति या धन संग्रह करने में असमर्थ रहे । नहीं, शक्ति और धन संग्रह ही जीवन की महानता के मापदण्ड नहीं हैं । अनेक ऐसे महान् पुरुष हुए हैं जिन्होंने शक्ति या धन-संग्रह नहीं किया, उन्हें जीवन की जटिल परिस्थितियों में संघर्ष करना पड़ा, परन्तु वे मानवता और संसार के लिए इतना अमूल्य ज्ञान और आविष्कारों की सम्पत्ति छोड़ गए हैं जिससे उनके जीवन की महानता विश्व के इतिहास में अमर होकर चमकती रहेगी । ध्रुव जैसी अटल और स्थिर । इसलिए जब तुम अपना लक्ष्य निर्धारित करो तो यह आवश्यक नहीं है कि तुम बहुत अधिक शक्ति-संग्रह या सम्पत्ति की बात ही सोचो । तुम एक धनी, या राजनीतिज्ञ न होकर भी महान् बन सकते हो । दीनबन्धु एन्ड्रूज धनी नहीं थे, न किसी राजनीतिक दल के नेता परन्तु फिर भी उनकी महानता किसी प्रधान मन्त्री या धनी से कम नहीं थी । आजकल के प्रचार और प्रकाशन के युग में 'धन और शक्ति' महानता का ढिंढोरा पीट सकती है और उच्चता का सेहरा पहना सकती है, परन्तु यह क्रम अधिक नहीं चल सकता । महान् तो वही रहेंगे जो मानवता और संसार के लिए वस्तुतः कोई उपयोगी कार्य करेंगे ।

वास्तव में जीवन में जो सर्वोपयोगी वस्तु है, वह न खरीदी जा सकती है और न बेची । एक कहावत है "एक आदमी की वास्तविक सम्पत्ति यह है कि वह संसार का कितना अधिक भला करता है" (A

man's true wealth is the good he does in this world) जब उसकी मृत्यु होगी तो इस धरती के आदमी पूछ सकते हैं कि उसने अपने पीछे क्या छोड़ा ? परन्तु देवता उससे यही पूछेंगे, "तुमने अपने पूर्व क्या अच्छे कर्म यहाँ भेजे हैं।"

वास्तव में यह ठीक भी है। जीवन का लक्ष्य ऊँचा होना चाहिए क्योंकि हमारे शास्त्रों में कहा है—

गुणि गणगणनादम्भे न पतति कठिनी संसभ्रया यस्त्र—
तेनाम्भा यदिस्ततनी वद बन्ध्या इर्षा भवति ?

(जिस माता की संतान की गणना श्रेष्ठ व्यक्तियों की गणना में प्रथम न हो तो यदि उस माता के पुत्र है तो फिर बाँझ कौन है ?) धन कमाना स्वतः बुरा नहीं है, यदि वह उचित साधनों से हो और उसका उचित उपयोग किया जाय, क्योंकि धन की आकांक्षा के कारण ही हम व्यापार में इतनी आश्चर्यजनक प्रगति पाते हैं। इस प्रकार के विचार ने हमें दूसरे देशों के उत्पादन और वहाँ की स्थिति में दिलचस्पी लेना सिखाया है, यहाँ तक कि हमारे दृष्टि-कोण में सहिष्णुता पैदा करके हमें दूसरे के साथ मिल कर काम करना सिखाया है। किसी लेखक ने लिखा है :—

"This passion for money has supplied an outlet for energy which would otherwise have been put up and wasted, have accustomed men to habits of enterprise, forethought

and calculation, have moreover, communicated to us many parts of great utility, and have put us in possession of some of the most valuable remedies with which we are acquainted, either to save life or lessen pain. These things we owe to the money. If theologians could succeed in their desire to destroy that love, all things would cease, and we should relapse into comparative barbarism."

लेकिन हमें यह भी समझना है कि हमारे जीवन का लक्ष्य केवल सोने की पासें नहीं होना चाहिए। जीवन में और भी बहुत से प्रेरक तत्व ऐसे हैं जो हमारे जीवन को सफलता की ओर ले जा सकते हैं। यदि किसी को इंजीनियर बनना है तो फिर उसे एक श्रेष्ठ इञ्जीनियर बनना है बजाय इसके वह अपनी शक्ति केवल किसी प्रकार धन एकत्रित करने में लगाये। इसी प्रकार एक व्यापारी का लक्ष्य यह नहीं होना चाहिए कि वह किसी प्रकार अपना माल बेचकर सोने के टुकड़े इकट्ठे करें वरन् ज़रूरत इस बात की है कि वह अपने माल की विशेषता और अधिक बढ़ाये। वैज्ञानिक, लेखक, सम्पादक सभी के साथ यह नियम लागू होता है।

परन्तु ऐसा कहने से मेरा यह तात्पर्य नहीं है कि हमें वस्तु

स्थिति से दूर केवल आकांक्षाओं के स्वप्निल संसार में घूमते रहना चाहिए। हमारी कल्पना कितनी ही विस्तृत क्यों न हो, परन्तु हमारे पैर पृथ्वी से पृथक नहीं होने चाहिए, हमें परिस्थितियों को भूलना नहीं चाहिए, नहीं तो हम औंधे मुँह गिरेंगे। ऊँचा लक्ष्य होते हुए भी, हम जिस हालत में हैं, उसका हमें पूरा ज्ञान होना चाहिए। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि महान् बनने के लिए हमें उन परिस्थितियों से संघर्ष करना है। उस गत्यावरोध को उन्मूलित करके ही हम प्रगति के प्रशस्त मार्ग पर आगे बढ़ सकते हैं।

परिस्थिति होती है जब हम इन बाधाओं को हटाने में असफल होते हैं, जब हमारे सामने निराशामय संसार होता है, उस समय अगर हमने सोचा कि "रात दिन प्रयत्न किया, सफलता के लिए जूझा, संघर्ष किया। मैंने कोई प्रयत्न नहीं छोड़ा जिससे मैं अपने लक्ष्य में विफल होता। इस पर भी मेरे भाग्य में असफलता लिखी थी। फिर किसलिए यह संघर्ष, किसलिए यह कशमकश?" जहाँ ऐसी भावना ने हमारे ऊपर अधिकार किया, हम निस्पन्द और निश्चेष्ट होकर निराशा के पंजे में जकड़ते जायेंगे। प्रगति और विकास की समस्त आशा धूल में मिल जायेंगी। कल्पना के किले की दीवारें गिर जायेंगी। इसलिए हमें परिस्थिति से घबराना नहीं है। हमारा तो यह निश्चित विचार होना चाहिए कि मैं ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ कृति हूं, अगर मैं ही इनसे डर गया तो क्या इसमें

उस परमपिता की हीनता न होगी। समस्याओं पर विजय पाना ही तो मानवता है।"

जहाँ तुमने ऐसी भावना को जन्म दिया, वहाँ तुम्हारा हृदय एक नव आशा और स्फूर्ति से भर उठेगा। तुम अपने जीवन में अमिट उत्साह और लगन संचार करने में सफल होगे और स्थिति हो सकती है कि जब तुम प्रगति के मार्ग पर काफी आगे बढ़ सको। मैं यह नहीं कहता कि तुम ऐसी प्रवृति को हमेशा जन्म दे सकते हो, परन्तु जब भी तुम इस प्रकार की भावना पैदा कर सके, तुम समुचित प्रगति कर सकोगे।

सम्भव है कभी कभी धीर और वीर मनुष्य भी परिस्थिति से असन्तुष्ट हों लेकिन यह निश्चय है कि कोई मनुष्य संसार से असन्तुष्ट नहीं रहा जिसने अपने कर्तव्य की पूर्ति की। यह संसार तो एक शीशे के समान है, अगर तुम इसे हँसते हुए देखते हो तो यह भी हँसता है और अगर तुम रोते-झींकते हो तो यह भी रोता झींकता है। अगर तुम उसे एक लाल शीशे से देखते हो तो उसका रंग भी लाल हो जाता है। इसलिए सदैव प्रत्येक परिस्थिति को आशावादी दृष्टि से देखो। लार्ड एडनबरी ने एक स्थान पर लिखा था कि "कुछ आदमी ऐसे होते हैं कि जिनकी मुस्कराहट, उनकी बोली की आवाज़—यहाँ तक कि उनकी मौजूदगी एक चमकीली आशा किरण जैसी प्रतीत होती है जो कमरे

को जाज्वल्यमान कर देती है।" क्या तुम अपने को ऐसा बनाने का प्रयत्न न करोगे ?

और फिर यह भी सम्भव है कि तुम असफल रहो, लेकिन तुम अपने कर्तव्य की अवश्य पूर्ति करोगे और तुम्हारे लिए यह भी संतोष की एक वस्तु हो सकती है। संक्षेप में—

(१) तुम अपना लक्ष्य ऊँचा बनाओ।

(२) उस ऊँचे लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए छोटा कार्य करने से न हिचको।

(३) केवल कल्पना के संसार में विचरने का प्रयत्न न करो।

(४) असफल होने पर निराश न होकर पुनः प्रयत्न करो।

यह देखो, नम्बरदार मुझे खाना खाने के लिये बुला रहा है, और मैं चला।

—तुम्हारा पिता

भावी जीवन की योजना

(२)

प्यारे बेटे,

आज जब कि मैं यह पत्र तुम्हें लिखने को बैठा हूं तो रात्रि के अँधेरे की चादर को चीर कर प्रकाश की छुटपुट रेखायें अपना मार्ग बनाने के लिए कशमकश कर रही हैं परन्तु देखो, यह संघर्ष कैसा चुप-चुप हो रहा है, नीरवता अब तक चारों ओर छाई हुई है, केवल 'ताला जंगला ठीक है साहब' की आवाज़ सुनाई देती है, या फिर पास में ही रेल की सीटी की आवाज़ दिल में गुदगुदी पैदा करके निकल जाती है। यहां से स्टेशन बहुत नज़दीक है और सुबह होने से पूर्व ही रेलगाड़ियों के आने-जाने की काफी हलचल सुनाई पड़ती है। तुम जानते हो कि जब मैं बाहर था, कम-से-कम एक मास में एक दो हज़ार मील तो रेल में सफ़र करना पड़ ही जाता था परन्तु आज तो बीस महीने से रोज़ रेलगाड़ी की सीटी का आह्वान तो सुनता ही हूं, परन्तु यह

सन्देश केवल मेरे मस्तिष्क में एक विचित्र भावना को उत्पन्न कर व्यर्थ ही निकल जाता है। मेरा शरीर इस जेल की चहारदीवारी में ही बन्द है। हाँ! मेरे ख्यालात ज़रूर हज़ारों नहीं लाखों मील की उड़ान लेते रहते हैं।

हाँ! तो अब हमें अपने विषय पर आ जाना चाहिए। मैंने तुम्हें अपने पूर्व पत्र में बतलाया था कि प्रत्येक युवक को जीवन में अपने को महान् और ऊँचा उठाने का निश्चय कर लेना चाहिए परन्तु महत्वाकांक्षा के पोषित करने से ही कोई मनुष्य महान् नहीं बन सकता। शेखचिल्ली की तरह बड़ी बड़ी बातें सोचने अथवा कल्पना करने से ही कोई ऊँचा नहीं उठ सकता, संसार में जादू की कोई ऐसी लकड़ी नहीं है, जिसके छूते ही मनुष्य में बड़प्पन और ऊँचाई आ जाय। संसार में जितने मनुष्य हुए हैं, उन्होंने अपने जीवन में प्रत्येक कदम पर परिस्थितियों से युद्ध करके अपने को ऊँचा उठाया है। मनुष्य पग-पग पर अपने को ऊंचा उठाये तभी वह महान् बन सकता है। यदि कोई युवक अपनी दिमाग़ी कसरत से ख्याली दुनिया में अपने को महान् समझ बैठे और अपनी वास्तविक हालत पर विचार न करे तो उसकी दुनिया तो शेखचिल्ली की दुनिया ही बन जायगी।

ऊँचा उठने के लिए जीवन में योजना की बहुत आवश्यकता है। आज का युग इतना आगे बढ़ गया है और मानवीय सम्बन्ध इतने जटिल होगये हैं कि बिना एक निश्चित योजना और कार्य-क्रम के हम

जीवन में सफलता प्राप्त नहीं कर सकते । जिस तरह गृह बिना किसी नक़शे और योजना के प्रारम्भ करने पर तो यह निश्चय है कि वह बहुत ही कुरूप, असुविधापूर्ण और भोंड़ा बनेगा। उसमें रुपया भी अधिक लग जाता है। इसी प्रकार जीवन भी बिना योजना के परस्पर भावनाओं के संघर्षों का ढेर मात्र बन जाता है। उसमें अत्याधिक श्रम और प्रयत्न होने पर भी किसी व्यवस्था का निर्माण नहीं होता, ऊबड़खाबड़ ज़मीन पर उल्टी-सीधी रखी हुई ईंटों का ढेरमात्र। एक सुन्दर मकान के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि उसकी एक रूप-रेखा पहले ही से, निर्मित करली जाय। कौन-सी चीज़ कहाँ होगी, बाग कहाँ बनेगा, मुख्य द्वार कौन सा होगा, पढ़ने का स्थान कहाँ रहेगा, बच्चे कहाँ खेलेंगे, भोजन-घर किधर होगा, उसका धूआँ तो सारे मकान में नहीं भर जायगा, गरमियों में सोने की कहाँ व्यवस्था होगी, बरसात में पानी निकल जाने का क्या प्रबन्ध होगा ? आदि। जिस तरह एक साधारण मकान के बनाने के लिए एक योजना और प्लान की अत्यन्त आवश्यकता है, उसी तरह जीवन का सुन्दर भवन भी बिना किसी योजना के तय्यार नहीं हो सकता। जीवन का निर्माण साधारण घर के बनाने से अधिक कठिन है और जिस तरह एक घर की योजना बनाने में अनुभवी इञ्जीनियर की सलाह और पथ-प्रदर्शन की आवश्यकता होती है, उसी तरह जीवन की योजना बनाने और उसके निर्माण करने में अपने से

बड़े अनुभवी व्यक्तियों के अनुभव और विचारों से भी लाभ उठाने की ज़रूरत है। किसी ने कहा है कि महान् व्यक्तियों के पद-चिन्हों पर चलकर ही हम भी महान् बन सकते हैं। मैं मानता हूं कि प्रत्येक मनुष्य की आवश्यकतायें पृथक होती हैं और उसकी रुचि भी भिन्न-भिन्न होती है। जिस तरह मनुष्यों की आवश्यकताओं और रुचि का ध्यान रखते हुए इन्जीनियर के अनुभव से मकान बनना चाहिए, उसी तरह प्रत्येक युवक की प्रवृत्तियों तथा इच्छाओं को ध्यान में रखते हुए अपने से बड़े अनुभवी व्यक्तियों के परामर्श से जीवन के निर्माण की योजना बननी चाहिए।

मुझे अत्यन्त खेद है कि बहुत ही थोड़े लोग अपने जीवन में किसी योजना से काम लेते हैं। वास्तव में उनका जीवन एक परस्पर विरोधी बातों का ढेरमात्र है, उनकी शक्तियाँ आपस में ही टकरा कर नष्ट हो जाती हैं। हम इसका एक नमूना अपने युवकों की शिक्षा में ही लेते हैं। उनकी शिक्षा किसी योजना के आधार पर नहीं होती, इस पर किसी ने ध्यानपूर्वक सोचा भी नहीं है। जो चीज़ जब सामने आ गई और योंही बिना सोचे हमारे जीवन में प्रवेश पा गई। अनेक युवक जो अच्छे इञ्जीनियर बन सकते थे, एल० एल० बी० की क्लासों की दीवारों से माथा टकरा रहे हैं और जो अच्छे साहित्यकार बन सकते हैं वे विज्ञान पढ़ने में अपनी शक्तियों का दुरुपयोग कर रहे हैं। जो अच्छे व्यौपारी बन सकते हैं,

और जो और उद्योग-धन्धों की विद्या प्राप्त कर सकते हैं, वे बायलोजी (Biology) प्राणिशास्त्र में अपने को खपा रहे हैं। एक वकील साहब ने एम० एस-सी० प्राणिशास्त्र में किया, कभी फिर एल० एल० बी० पास करके कचहरी के बारस्म की कुर्सी तोड़ने लगे। उनसे प्राणि-शास्त्र के विषय में पूँछिये—वह कहेंगे मैंने यह विषय पढ़ा ज़रूर था, पर अब मुझे कुछ याद नहीं रहा, अब तो उसका कुछ काम ही नहीं पड़ता।

जीवन में एक धारा होनी चाहिये यानी उसमें परस्पर विरोधी बातों में जीवन की शक्ति और समय का दुरुपयोग नहीं होना चाहिये। उनके लिये इस बात की आवश्यकता है कि वे अपने को समुद्र की लहरों पर तैरनेवाले उस तख्ते की तरह न बनाएँ, जो लक्ष्यहीन कभी इधर कभी उधर घूमता फिरता है पर घूमता उसी छोटे दायरे में है और अन्त में उसी संघर्ष में नष्ट हो जाता है। तुम्हें अपने जीवन का लक्ष्य निश्चित करना चाहिये। शिक्षा, धन, स्वास्थ्य, सामाजिक कर्तव्य, और अध्यात्म सब के लिये उचित स्थान रखना चाहिये और इस योजना में अपने से अनुभवी बड़े व्यक्तियों की सलाह लेनी चाहिये। उनकी सहायता और परामर्श से एक चतुर नाविक की तरह अपनी जीवन नौका को एक निश्चित लक्ष्य की ओर खेना चाहिये। तुम्हें अपनी इस योजना में समय-समय पर परिवर्तन करने की आवश्यकता होगी, परन्तु यदि तुम लक्ष्य को सामने रक्खो तो तुम इधर-उधर भटकने से अवश्य बच जाओगे।

अब तुम इस अवस्था में प्रवेश कर रहे हो, जब धीरे-धीरे तुम अपने जीवन की योजना बनाने की बात सोच सकते हो। मैं तुम्हारी यथाशक्ति मदद करने को तत्पर हूं, परन्तु मैं तुम पर अपना कोई फैसला लादना नहीं चाहता। तुम जिन ग़लत रास्तों को पकड़ोगे, मैं तुम्हें उनके ख़तरों से ख़बरदार ज़रूर कर दूँगा, पर तुम्हें अपना रास्ता आप तय करना होगा। हमारे शास्त्रकारों ने कहा है कि सोलह वर्ष के बाद लड़का मित्र हो जाता है, उसे मित्र की तरह परामर्श देना चाहिये। अब जमाना आज़ादी का है। यद्यपि मैं आत्महत्या करने की आज़ादी का क़ायल नहीं हूं पर जिस युवक ने आत्म-हत्या करने की ठान ही ली हो, उसे हम ज़बरदस्ती नहीं रोक सकते। जबरदस्ती करने से तो उसका आत्महत्या करने का हठ और भी बढ़ जाता है। हाँ, अपनी विचार-शक्ति से हम उसकी विचारधारा को बदल सकते हैं। जीवन को ग़लत रास्ते पर डालना आत्म-हत्या ही करना है। इस आत्म-हत्या से प्रत्येक युवक को बचना चाहिये।

—तुम्हारा पिता

जीवन में समतुलन

(३)

प्यारे बेटे !

यहां इस समय कई ज़िले के करीब सवा सौ नज़रबन्द हैं, इनकी संख्या किसी समय तो ३८० तक पहुँच गई थी। सन् १६४१ में यह संख्या चार सौ, साढ़े चार सौ तक थी। उस समय प्रान्त के अधिकांश जिले के राजनैतिक कार्यकर्त्ता यहां थे। हम लोग महीनों और वर्षों से एक दूसरे के इतने सन्निकट रहे हैं, जितना प्रायः बाहर की दुनिया में दो व्यक्तियों को भी रहने का अवसर कम मिलता है। और मैं तो अब इस प्रकार के जीवन का एक प्रकार से आदी हो गया हूं। हालांकि यह जीवन एक रेल के स्टेशन के थर्ड क्लास के वेटिंगरूम का-सा जीवन है। यहां एक ही जगह पर बहुत से आदमी बे-तरतीब से और बिना किसी पर्दे के एक स्थान पर ही भर दिये गये हैं। हां! इस जीवन की एक विशेषता यह है कि उस वेटिङ्ग-रूम में तुम्हारी आंखों के सामने से नई-नई चीजें गुज़रती हैं पर यहाँ हम महीनों और वर्षों से केवल कुछ इनी-गिनी चीज़ें और एक ख़ास

तरह के वातावरण को देखते-देखते थक जाते हैं, पर फिर भी हमें यहां मनोविज्ञान के अध्ययन करने के काफ़ी मौके मिलते हैं।

आज मुझे तुम्हें यह बताना है कि जीवन में समतुलन की बड़ी ज़रूरत है। गीता में भगवान् कृष्ण ने कहा है "समत्व योग उच्यते" समत्व को ही योग कहते हैं; यह समत्व क्या है ? मनुष्य के जीवन में तीन शक्तियां बहुत बड़ा काम करती हैं; वास्तव में ये शक्तियाँ जीवन के ऐन्जिन के लिये हवा, पानी, और कोयला का काम देती हैं। ये शक्तियाँ हैं भावना या प्रेरणा (emotions), ज्ञान (Knowledge) और कार्यकारिणी शक्ति (action)। गीता में कृष्ण ने इन्हीं को भुक्ति, ज्ञान और कर्म कहा है और इन तीनों के समन्वय का उपदेश दिया है। तुम्हीं सोचो कि हवा पानी और कोयले में से अगर कोई भी चीज़ उपस्थित न हो तो क्या वह ऐन्जिन एक क़दम भी आगे बढ़ सकता है। भावनाएँ जीवन की समस्त प्रगति का मूल स्रोत हैं, ज्ञान अथवा कर्म-अकर्म, विवेक उसका मार्ग प्रदर्शन करते हैं और कर्म वह शक्ति है जो भावनाओं को ज्ञान के प्रदर्शन से ठीक रास्ते पर क्रियात्मक रूप देती है। इनमें से एक भी वस्तु न होने से तुम्हारी जीवन-यात्रा ख़तरे से खाली नहीं हो सकती। यदि भावनाएँ न हों तो जीवन बिल्कुल नीरस हो जायगा, तुम में आगे बढ़ने की कोई प्रेरणा न होगी, ज्ञान के मार्ग बिना तुम अँधेरे में लड़खड़ा कर गिर पड़ोगे और कर्म के बिना उन तीनों चीज़ों के होने पर भी तुम एक इन्च हिलोगे ही नहीं। इसलिए

जीवन में ऊँचा वही उठ सकते हैं जिनमें इन तीनों को उचित स्थान पर रक्खा गया हो।

ज़रा हम भारतवर्ष को ही क्यों न लें ? गीता में कृष्ण ने भक्ति, ज्ञान और कर्म के समन्वय का उपदेश दिया है परन्तु भारतवर्ष जब इनमें से एक को भी भूला, उसे ठोकरें खानी पड़ीं। बुद्ध के जन्म के पूर्व एक अवसर ऐसा आया जब लोग ज्ञान और कर्म को भूल गए और कर्मकाण्ड या अन्धविश्वास ही उनके जीवन का मूल-मन्त्र बन गया। प्रत्येक दिन यज्ञ और धार्मिक क्रियाओं में ही लगे रहते, यज्ञों में पशु और नर बलि दिए जाते, लोग शराब और मांस में मस्त रहते। परिणाम क्या हुआ ? समाज की सारी व्यवस्था बिगड़ गई और मनुष्य का जीवन नरक तुल्य बन गया। परिणाम हिन्दू-धर्म का अधःपतन और बुद्ध का आगमन। शङ्कर के बाद भारतीय आत्म-अनात्म विषय पर वाद विवाद होते, जीवन का एक-मात्र लक्ष्य वही हो गया था, लोग शुष्क तर्कवाद में भावनाओं और कर्म को भूल गए। जीवन के संघर्ष को छोड़कर लोग कहते रहते मैं ब्रह्म हूं—'अहम् ब्रह्मास्मि', परिणाम पुनः वही हुआ, हिन्दू भारत का पतन और मुसलमान शासकों की गुलामी। एक युग फिर आया जब लोग ज्ञान और कर्म को भूल गये और अन्धी भक्तिभावना ही उनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य रह गई। बंगाल और दूसरे प्रदेशों में दिन-दिन भर राष्ट्र का राष्ट्र पैर में घुँघरू बांध कर और ढोल मञ्जीरे के साथ 'हरे कृष्ण ! हरे कृष्ण' तो गाते और

उसमें अपने को धन्य समझते, पर कृष्ण के उपदेश ज्ञान, भक्ति और कर्म के समन्वय की ओर ध्यान नहीं देते थे। परिणाम हुआ व्यभिचार, अकर्मण्यता, ग़रीबी और अँगरेज़ों की गुलामी।

जो बात एक राष्ट्र के लिए ठीक है, वही एक मनुष्य के लिए भी सही है। प्रत्येक मनुष्य को अपने जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिये प्रेम की भावनाओं, ज्ञान और कर्म के समन्वय की आवश्यकता है। जिस प्रकार एक चित्रकार एक चित्र में प्रत्येक रंग को सुन्दरता से अपने स्थान पर रखता है, इसी तरह से प्रत्येक मनुष्य को अपने जीवन में आवश्यक चीज़ें उचित स्थान पर रखने की आवश्यकता है।

शारीरिक विकास और स्वास्थ्य जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक वस्तु हैं परन्तु यह देखिये पहलवान जी—इन्होंने इसको अपने जीवन में इतना अधिक अपना लिया है कि दूसरी ज़रूरी चीज़ें इनके जीवन में बहुत पीछे रह गई हैं। दिन भर कुश्ती लड़ना और दण्ड-बैठक लगाना ही इनके जीवन का एकमात्र उद्देश्य है। और यह प्रोफेसर साहब! यह दुनिया भर की सब किताबें पेट में हज़म किये बैठे हैं पर फिर भी दिन भर किताबें ही पढ़ते रहते हैं। 'किताबी-कीड़े' हैं पर स्वास्थ्य इनका बिलकुल खस्ता हालत में है। सदा बीमार रहते हैं, इनका पढ़ना सब व्यर्थ! और यह लाला जी दिन रात चांदी काटने की चिन्ता में रहते हैं, बैङ्क में लाखों रुपया है पर फिर भी लक्ष्मी के पीछे बड़ी बेरहमी

से पड़े हैं। इन्हें दूसरे काम के लिये एक मिनट की फ़ुरसत नहीं, ज्ञान अथवा स्वास्थ्य से इन्हें कोई वास्ता नहीं। और यह पण्डित जी, दिन भर आँखें मूँदे जप करते रहते हैं, दुनिया से इनका छत्तीस में तीन-छः का नाता है पर दूसरे के सिर के बोझ बने हैं, इन्हें अमुक लालाजी से खाने, पीने, कपड़े के लिये गिड़गिड़ा कर आत्म-सम्मान बेचना पड़ता है। धन कमाने और कार्य करने को इन्होंने उचित स्थान नहीं दिया। यह एक बाबू साहब हैं पूरा साहबी ठाठ-बाट, भावनाओं और वस्तु-स्थिति से दूर, जीवन की सामग्रियों और ठाठ-बाट को ही सब कुछ समझते हैं; इतनी रंगीनी होने पर भी यह शुष्क कठ-पुतलों की तरह हैं।

अपने जीवन में उचित वस्तुओं को उचित स्थान पर रखने के महत्व को भली प्रकार समझ लेना चाहिये। जीवन के भिन्न-भिन्न पहलुओं की व्यवस्था के सम्बन्ध में— मैं तुम्हें आगे के पत्रों में समय समय पर लिखूँगा। इनसे यदि तुम्हें कुछ लाभ हुआ तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। सम्यक् जीवन ही सफलता की कुञ्जी है।

तुम यहाँ यह पूछ सकते हो कि क्या मनुष्य को किसी चीज़ में विशेषता प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं है? अवश्य है। हमें जीवन में कुछ विशेष चीज़ों पर अधिक ज़ोर देना होता है। वास्तव में प्रत्येक जीवन का इस संसार में एक विशेष उद्देश्य होता है परन्तु इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये हमें दुनिया की दूसरी चीज़ों से अपने को बिलकुल पृथक् कर लेने की ज़रूरत

नहीं है। वास्तव में उस विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिये भी मनुष्य को भिन्न-भिन्न अन्य सहायक वस्तुओं का उपयोग करना आवश्यक होता है। उनका उपयोग करते हुए भी अपने मूल उद्देश्य को नहीं भूलना चाहिये।

—तुम्हारा पिता।

———

जीवन में आशावाद

(४)

प्यारे बेटे,

जीवन की लहरों के संघर्ष के थपेड़े खाते-खाते मैं कभी कभी बेचैन हो उठता हूं परन्तु फिर सोचता हूं जीवन के इस भयङ्कर संघर्ष में मुझे कौन जीवित रक्खे हुए है ? जब चारों ओर निराशा का निविड़ अँधेरा हमें अपने जीवन में घेर लेता है तब वह कौनसा टिमटिमाता दीपक है जो हमें उस अँधेरे पथ पर ठोकरें खाते हुए भी अपने लक्ष्य की ओर आगे बढ़ाता है ? यद्यपि यह दीपक की अस्फुटित किरणों की एक हलकी-सी रेखाएं ही हैं जो अवसर से संघर्ष करके हमारी ओर बढ़ती हुई दिखाई देती हैं और यद्यपि हमें अपना रास्ता टटोलने में उनसे अधिक सहायता नहीं मिलती परन्तु फिर भी उनसे हमें हृदय में बल अवश्य मिलता है।

मैं कभी-कभी सोचता हूं आखिर देश में आज हज़ारों आदमी महीनों और वर्षों से अपने परिवार से दूर अनेक मानसिक और

शारीरिक कठिनाइयों में किस आशा में जीवन धारण किये हुए हैं? आज कौन-सी चीज़ है जो गाँधी की मुट्ठी भर हड्डियों को जब चारों ओर अन्धकार है, कुछ नहीं सूझता, आगे बढ़ा रही है? क्या वह मानवता और देश के सुन्दर और उज्ज्वल भविष्य की आशा नहीं है? वह अपने इस विश्वास में निराशा की घनघोर घटाएँ होते हुए भी लकड़ी टेकते-टेकते आगे नहीं बढ़ता जा रहा है।

हिटलर ने जब नाजी पार्टी को जन्म दिया तो उसके पास नोटिस निकालने को पैसे नहीं थे। वह हाथ से ही कई प्रतियाँ कर लेता और अपने सदस्यों के पास पहुँचा देता परन्तु उसके हृदय में आशा और विश्वास था। क्या इस महायुद्ध में जब हिटलर ने अंग्रेजों और मित्र शक्तियों पर आक्रमण किया उस समय उनके लिये अन्धकार ही अन्धकार नहीं था। उसके पास कोई सैनिक तय्यारी नहीं थी, वे आन्तरिक संघर्ष से कमज़ोर थे और पुराने घरों की तरह ज़रासी ठेस से ढह रहे थे। देखते-देखते योरप के अनेक देश उनके सामने बतासों के महलों की तरह बैठ गये। चर्चिल और अङ्गरेजों के लिये और चाहे जो कुछ कहा जाय पर आदमी वे जीवन के हैं, इस निराशा में भी उन्होंने आशा को अपने हाथ से नहीं जाने दिया और विश्वास के साथ अपनी तय्यारियों के साथ जुट गये और आज सभी मोर्चों पर जरमनों से टक्करें ले रहे हैं।

हाँ, आशावाद का यह मतलब नहीं है कि हम वस्तुस्थिति का

अनुमान करें, आधार-रहित स्वर्ण-भविष्य की कल्पना करना आशावाद नहीं है, बुद्धि रहित हवाई महलों में घूमते रहना ही आशावाद नहीं है, हमें जीवन की वास्तविक परिस्थितियों का बुद्धिपूर्ण ज्ञान होना चाहिये। हमारी भविष्य की कल्पनाओं का आधार विवेकपूर्ण और गणित के वैज्ञानिक नियमों पर होना चाहिये परन्तु उनमें स्थान स्थान पर आशा की चमक और विश्वास की मज़बूती होनी चाहिये। कठिन परिस्थितियों से युद्ध करते हुए भी हम में आशा का उल्लास होना चाहिये । तुमने ऐबीसिनिया के सम्राट 'हेल-सलासी' का नाम तो सुना होगा। कुछ वर्ष हुए इटली ने ऐबीसीनिया पर चढ़ाई करके उसे अधीन बना लिया । हेल-सलासी को अपनी मातृभूमि छोड़नी पड़ी पर उसने आशा नहीं छोड़ी, वह योरोप के राजनीतिज्ञों के दर-दर पर मारा मारा फिरता रहा, राष्ट्रसंघ में भी पहुँचा और अपनी दर्दभरी कहानी सुनायी; पर सब व्यर्थ ! परन्तु क्या उसने प्रयत्न छोड़ दिया ? नहीं, वह करता रहा। जब द्वितीय विश्व-युद्ध छिड़ गया तब उसे यथा-अवसर प्राप्त होगया, उसे अपना देश वापिस मिल गया।

तुम्हीं सोचो, दुनिया में आशा न होती तो हमारा जीवन कितना नीरस हो जाता। हममें कार्य करने का कौन-सा बल होता। राजा भर्तृहरि के अनुसार आशा छोड़ने के लिए वैराग्य का सहारा लेना चाहिये। परन्तु इस आशा को छोड़ कर मनुष्य क्या करे ? भगवद्‌भजन ? किसलिए ? इसीलिए न कि उसे भगवत्-साक्षात्कार

की आशा है। यदि इस बात का विश्वास न हो तो फिर भगवत् चिंतन में किसका चित्त लगेगा ?

खेद है कि इधर कुछ शताब्दियों से हिन्दुओं का जीवन नकारात्मक (Negative) होगया है और निराशा, पराजितभाव और असारवाद ने उसके जीवन के फल की पंखुड़ियों को कीड़ों की तरह चाट लिया है । शङ्कराचार्य और दूसरे दार्शनिकों ने कहा कि 'यह वाह्य दुनिया निस्सार है।' इन सिद्धान्तों का प्रचार इस लक्ष्य से किया गया था कि भारतवासी बिलकुल दुनियावी होकर अध्यात्म को न भूल जाँय पर इसका परिणाम उलटा ही निकला, उनमें जीवन-शक्ति ही नष्ट हो गई, वे हीन और पतित हो गये, उन्होंनें गुलाम बन कर अपनी आत्मा को ही बेच दिया। निराशा नें उनके जीवन में बैठ कर उनके समस्त विकास को ढक दिया।

हमें जीवन के नकारात्मक (Negative) पहलू को न लेकर उसके यथार्थ (Positive) को अपनें सामने रखना चाहिये। इससे मेरा यह तात्पर्य नहीं है कि हमें पूर्णतः जड़वादी बन जाना चाहिये। मैं यह मानता हूं कि हमारा सुख बाहरी दुनिया से ही हमें नहीं मिल सकता, हमारे भीतर जो कुछ है, उसकी आभा उचित प्रकार से प्रस्फुटित होने पर और उसकी बाहरी दुनिया और उसकी चीज़ों के प्रति उचित प्रतिक्रिया होने पर ही हमें प्रकाश प्राप्त हो सकता है परन्तु हमारे सामने जो कुछ दुनिया है वह मिथ्या है,

सारहीन है, कहने भर से काम नहीं चल जायगा। इससे जड़वाद की ओर बढ़ता हुआ प्रवाह रुक अवश्य जायगा परन्तु यदि फिर उसे किसी ओर नहीं लगाया गया तो उसका स्रोत ही सूख जायगा। दुनिया के सब काम झूठे हैं, यह निराशा की शिक्षा है। इसके विपरीत आशा की शिक्षा यह है कि हम अपने अन्तिम अध्यात्म को लक्ष्य में रखते हुए भी ईश्वर की आज्ञा को समझकर दुनिया की जटिल परिस्थितियों को यथार्थ मान कर, भविष्य की आशा लेते हुए उनसे युद्ध करें और इस दुनिया को अपने और संसार के अनगिनती वर्तमान और भावी प्राणियों के लिये उसे स्वच्छ और सुन्दर बनायें। गीता में भगवान् कृष्ण ने इसी आशा और विजय का संदेश दिया है।

मेरा कहने का मतलब यह है कि हमारा दृष्टिकोण यथार्थ होना चाहिये और हमें कठिन परिस्थितियों में भी आशा को हाथ से नहीं जाने देना चाहिये। दुनिया में दुख और सुख दोनों हैं। सम्भव है यह बात भी सही हो कि दुख अधिक हों परन्तु केवल इससे ही यह शिक्षा जो हम में निराशा पैदा करे, कुछ हमारे ज्यादा काम की नहीं हो सकती। फिर यहाँ दुख ज्यादा हों, यह ईश्वर का विधान भी नहीं हो सकता। यदि दुख केवल हमें महान् उद्देश्य की ओर से प्रेरित करने के लिये ही आते हैं तो हमें उनसे परेशान होने की जरुरत नहीं, तब तो वह हमें उतने ही प्रिय हो सकते हैं जितने सुख। नहीं, यह मैं नहीं मानता कि ईश्वर की मंशा यह है कि

इस दिशा में हमारा जीवन निराशा और दुखों की घनघोर घटाओं से घिरा रहे। मैं चाहता हूं कि तुम अपना दृष्टिकोण यह बनाओ कि यह दुनिया सुन्दर है और बहुत सुन्दर बन सकती है, इसमें हमें जो दुख भी मालूम होते हैं वह हमारे आने-वाले सुखों के सन्देश हैं। यह निश्चित है कि हमारा भविष्य सुन्दर है और हमें जो यह घनघोर घटाएं दिखाई दे रही हैं वह क्षणिक हैं और केवल इसलिये हैं कि हम दुःखों और असफलता के बाद सुख और सफलता का महत्व समझ सकें। आखिर यदि दुख और असफलताएँ न होतीं, तो सुख और सफलताओं में मिठास ही क्या होता? मैं तो तुम्हारा निराशावादी के स्थान में अतिशय आशावादी होना भी बुरा नहीं समझूँगा क्योंकि उस मनुष्य से जो सदैव निराशावादी रहता है वह अधिक सफल हो सकेगा जो अपने आशावाद के झोंके में विवेकपूर्ण आशावाद की सीमा को भी पार कर जाता है।

तुम्हारा पिता।

जीवन में नियम और व्यवस्था का महत्त्व

(१)

प्यारे बेटे,

आज जब मैं सोचता हूँ कि कितने युवक जो सफल व्यवसायी, सफल डाक्टर, सफल वकील, सफल प्रोफेसर, सफल सम्पादक और सफल सार्वजनिक कार्यकर्त्ता बन सकते थे, वे आज असफलता के गड्ढे में पड़े हैं, वे वकील हैं पर मुवक्किल उन्हें देख कर दूर से ही भड़कते हैं, वे डाक्टर हैं पर रोगी उनसे अपनी चिकित्सा कराने में हिचकिचाते हैं, वे व्यवसायी हैं पर जो उनके चंगुल में एक बार फँस जाता है वह दुबारा भूल कर उनका नाम नहीं लेता। जब मैं देखता हूँ कि वे अपने कालेज की परीक्षाओं में ऊँचे नम्बरों से पास हुये हैं, उनमें कार्यकारिणी शक्ति भी है तो मुझे उनकी असफलता पर आश्चर्य होता है। परन्तु यदि ध्यान से देखा जाय तो हमें उनकी असफलता का कारण ढूँढने में विलम्ब नहीं होगा। उनके जीवन में न कोई नियम है न कोई व्यवस्था है, उनके जीवन का कोई निश्चित कार्यक्रम नहीं है, उनके उठने, सोने खाने-पीने का कोई समय नहीं

है, उनका जीवन एक ऊबड़-खाबड़ है। उनकी आय-व्यय का कोई निश्चित बजट नहीं है, उनके रहन-सहन का कोई निश्चित मापदण्ड (standard) नहीं है, वे रुपया हाथ में आते ही बहुत-सी फ़िज़ूल की चीज़ों में उसे उड़ा देते हैं परन्तु जीवन की अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकते।

उनके रहने की जगह, कपड़े, पुस्तकें किसी के रहने या व्यवहार करने की कोई व्यवस्था नहीं है, सब कुछ अव्यवस्थित ढेर है। कोनों में पड़ी हुई कीमती किताबें धूल से भर रही हैं, बक्सों में चूहे कपड़े काट-काट कर ढेर कर रहे हैं, घर में कोई चीज़ अपने उचित स्थान पर नहीं है। इन परिस्थितियों में जीवन को सफलता के लिये स्थान कहाँ है? उनके घर आकर कौन व्यक्ति उनके जीवन से प्रभावित हो सकता है? उन्हें इन परिस्थितियों में रहकर आराम और शक्ति कैसे मिल सकती है? और यदि उन्हें सफलता प्राप्त न हो तो फिर आश्चर्य ही क्या है?

परन्तु यदि तुमने उन व्यक्तियों के जीवन को समीप से देखा है, जिन्होंने अपने को ऊँचा उठाया है तो तुम देखोगे कि उनके जीवन में नियम और व्यवस्था ही उनकी सफलता का कारण है। आज दुनिया का क्रम और नियम व्यवस्था से चल रहा है। तुम्हीं सोचो अगर आज सूर्य अपना नियम छोड़ दे, कभी रात्रि के बारह बजे ही उसकी उष्ण-रश्मियाँ हमारे शरीर को तपाने लगें और कभी दिन में दोपहर को भी उसकी अनुपस्थिति से अन्धकार रहे। अच्छा!

तुम रेल को ही लेलो, अगर वह कभी एक समय और कभी दूसरे समय जाने लगे तो तुम्हें कितनी तकलीफ होगी। इसी आन्दोलन के समय सन् १९४२ में गाड़ियों का समय बिलकुल उलट-पुलट हो गया तो रेलवे को कितनी हानि हुई ?

महात्मा गांधी के जीवन को ही देखो। आज वे अपने जीवन में जितना काम कर रहे हैं, उतना अन्य कितने लोग कर पाते हैं ? आज राष्ट्रों के नेता रूज़वेल्ट, चर्चिल, हिटलर, स्टेलिन आदि के जीवन में नियम और व्यवस्था न हो तो वे क्या अपने राष्ट्रों का सञ्चालन एक दिन भी कर सकें ? महात्मा गान्धी का जीवन बनावट और सजावट से दूर है, वे सेवागाँव में एक झोंपड़ी में रहते हैं, उनके यहाँ आधुनिक बढ़िया फर्नीचर, रेशम से ढकी हुई कोच और खूबसूरत छपे हुए पर्दे नहीं हैं परन्तु एक चीज़ जो उनकी झोंपड़ी के वातावरण को अत्यधिक प्रभावशील बना देती है वह वहाँ की नियम और व्यवस्था है। नियम और व्यवस्था से शान्ति भी उत्पन्न होती है। इस झोंपड़ी में बैठे हुए उस मुट्ठी भर हड्डियोंवाले मनुष्य की ओर दुनिया की आँखें लगी रहती हैं, दुनिया के कोने-कोने से स्त्री और पुरुष उसके दर्शन के लिये आते हैं। आज वह करोड़ों व्यक्तियों का भार अपने कन्धे पर लेकर चलता है पर यदि उसके जीवन में नियम और व्यवस्था न होते तो क्या वह एक कदम भी आगे बढ़ पाता।

दुनिया का सबसे बड़ा धनी फोर्ड अमरीका के एक शहर में बैठा

संसार के जीवन में एक अद्‌भुत भाग ले रहा है, आज उसी के उद्योग के कारण अमरीका में हर तीसरे आदमी के पीछे एक आदमी के पास एक मोटर है। आज करोड़ों रुपये की उसके कारखानों की मोटरें हर वर्ष हमारे देश में भी आकर सड़क-सड़क पर भों-भों करती हुई और धूल उड़ाती हुई दिखाई पड़ती हैं और उनमें बैठे हुए हिन्दुस्तानी साहब अथवा सेठजी सड़क पर चलनेवाले व्यक्तियों को अपनी अकड़ के सामने हेय और तुच्छ समझते और उड़ते हुए निकल जाते हैं। तुम्हीं सोचो आज यदि फोर्ड और दूसरी मोटर के व्यवसायी अपने नियम और व्यवस्था के बल पर बड़े संगठन न करते तो क्या वे अपनी टूटी बैलगाड़ी में ही टर्रसट्ट करते हुए दिखाई न देते।

हम अपने जीवन में ही नियम और व्यवस्था नहीं रखते परन्तु यदि दूसरे भी अपने जीवन में कोई नियम और व्यवस्था करना चाहते हैं तो उसमें रोड़े अटकाना चाहते हैं। पं० गोविंदवल्लभ पन्त काँग्रेस मन्त्रि-मण्डल में प्रधान मन्त्री हुए, प्रत्येक व्यक्ति चाहता था कि पण्डित जी उससे हर समय मिलें और घण्टों उससे बात करें। अनेक तो उनके बँगलों पर जाकर ही अपना अड्डा जमा देते परन्तु वे यह भी सोचते थे कि उन्हें पाँच करोड़ के इस प्रदेश का कितना महान् कार्य करना है, परिणाम उनके समय और शक्ति का दुरुपयोग। मैंने एक बार यह नियम किया कि जो सज्जन मुझसे मिलने आवें वे अपना नाम और कार्य लिख कर भेज दें। बस कुछ

सज्जनों को यही शिकायत का एक कारण बन गया। मुझे कुछ लोगों से प्राइवेट बात करनी है अथवा मुझे कुछ अन्य कार्य करना है तब भी लोग समझते हैं कि उनका अधिकार है कि वे जब चाहें बिना मुझे सूचना दिये मेरे पास चले आवें और घण्टों गप्पों में मेरा और अपना समय बरबाद करें। इस तरह कोई भी समाज या राष्ट्र बड़े बड़े कार्य नहीं कर सकता।

मैं अपने देश के सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं में व्यवस्था और नियम की बड़ी कमी पाता हूं। वे किसी भी व्यवस्था या नियम से आज़ाद रहना चाहते हैं। परिणाम सब तरफ़ गड़बड़ी। मुझे स्वयं इस अव्यवस्था के कारण बड़े धक्के लगे हैं और मैं जीवन में नियम और व्यवस्था के महत्त्व को भली प्रकार समझ गया हूं। मैं अब उस ओर प्रयत्नशील भी हूं। तुम जानते हो मेरा जीवन राजनीति, साहित्य, व्यवसाय की एक श्रृङ्खला है और इन विविध धाराओं में मैं जैसा व्यस्त रहता हूं उससे मैं कभी स्वयं परेशान हो उठता हूं परन्तु ज्यादा काम का होना तो नियम और व्यवस्था का कड़ाई से पालन करने का एक और बड़ा कारण है।

बचपन से ही अपने जीवन में नियम और व्यवस्था पालन करने से वह स्वभाव में आ जाती है। प्रारम्भ से ही उसकी आदत डालना तुम्हारे लिये एक बड़ी देन प्रमाणित होगी। मैं यहाँ कुछ मोटे-मोटे नियम तुम्हारे काम के लिये लिखता हूं।

(१) प्रत्येक चीज़ के रखने का स्थान नियत होना चाहिये और जो चीज़ जहाँ से उठाओ, उसको वहीं रख दो।

(२) प्रति दिन प्रातः ही दस पाँच मिनट अपनी-चीजें सँभाल कर उचित स्थान पर रक्खो और उन्हें साफ करदो; यह काम स्वयं करो, किसी दूसरे पर मत छोड़ो।

(३) यदि किसी से कोई चीज़ अथवा पुस्तक आदि मँगाओ तो उसे ठीक समय पर वापिस कर दो। अपनी चीज़ जो उधार दो उसकी याददास्त लिख लो और उचित समय पर वापस मँगालो। हमारे यहाँ तो एक कहावत है, "पहले लिख और पीछे दे, भूल पड़े काग़ज से ले।"

(४) पुस्तकें, कपड़े आदि रखने की ऐसी व्यवस्था हो जिसमें धूल आदि न भरे और न चूहे या दीमक नुकसान करें। प्रति दिन के कपड़े भी हमको ऐसी जगह रखने चाहिये जहाँ धूल न जासके। मरम्मत वाली चीज़ों की मरम्मत समय पर करा लेनी चाहिए।

(५) अपनी चिट्ठियों के रखने के लिए उचित व्यवस्था करो, सस्ती फ़ायलें रख सकते हो। कभी-कभी काग़ज़ों के इधर-उधर फेंक देने से बड़ा नुक़सान हो जाता है।

(६) अपने मासिक ख़र्च का एक बजट बनाओ और देखो कि तुम उसी के अनुसार काम करते हो। उधार मत लो और यदि कोई चीज उधार लो तो समय पर उसको अवश्य ही अदा कर दो।

(७) यदि सम्भव हो सके तो कपड़े, पुस्तकें, फ़र्नीचर और गल्ला वग़ैरः भी साल में दो बार ख़रीदने की व्यवस्था कर लो

श्रौर देख लो कि कौन चीज़ कहाँ से सस्ती श्रौर अच्छी मिल सकती है।

(८) अपनी दिनचर्या का एक कार्य-क्रम बनाश्रो श्रौर उसके अनुसार ही काम करो। दबाव पड़ने पर अपने नियमों को मत तोड़ो। यदि लोगों को मालूम हो जायगा कि तुम अपने नियमों का कड़ाई से पालन करते हो तो वे तुम्हारे नियमों का सम्मान करेंगे।

(९) एक डायरी अवश्य रक्खो, इससे तुम्हें अपने जीवन को व्यवस्थित रखने में बहुत सहायता मिलेगी।

(१०) जिससे जो कहो या वायदा करो उसको पूर्ति पूरी तरह करो। जिसको जो समय नियत करो उसका उसी समय पालन करो।

(११) जीवन में अपने 'नियम श्रौर व्यवस्था' की कभी-कभी परीक्षा करो श्रौर जो आवश्यक परिवर्त्तन समझो, उन्हें उसी प्रकार कर लो।

तुम्हारा पिता।

जीवन में कला और सौन्दर्य

(६)

प्यारे बेटे,

मैंने तुम्हें आखिरी चिट्ठी में 'नियम और व्यवस्था' पर लिखा था आज मैं तुम्हें 'कला और सौन्दर्य' पर लिखने बैठा हूं। वास्तव में 'नियम और व्यवस्था' कुछ 'कला और सौन्दर्य' से भिन्न नहीं है वरन एक का दूसरे से घनिष्ट सम्बन्ध है या यों कहो 'नियम और व्यवस्था' का विकसित रूप ही 'कला और सौन्दर्य' है। मैं यहाँ तुम्हें कोई सिनेमा, नृत्य या चित्रकारी पर कुछ लिखने नहीं बैठा हूं, केवल यही चीज़ें कला नहीं हैं और न केवल इन्हीं चीज़ों में सौन्दर्य निहित है। हमारे प्रतिदिन के जीवन में 'कला और सौन्दर्य' के लिए बहुत स्थान है। हम किस तरह खाते हैं, किस तरह सोते हैं, किस तरह चलते हैं, इन सब में कला के लिए स्थान है।

कला या सौन्दर्य केवल बनावट या सजावट में ही नहीं है, सरलता और सादगी में ही श्रेष्ठतम कला और सौन्दर्य है।

अनेक व्यक्ति सजावट और ऊपरी तड़क-भड़क में बहुत व्यय करते हैं परन्तु उसमें भी फूहड़पन और भोंड़ेपन को वह नहीं छोड़ सकते। वह कीमती कपड़े पहिनेंगे परन्तु उनमें वस्तुतः कोई कला या सौन्दर्य नहीं है। सस्ते और सादे कपड़े भी साफ़ और उचित प्रकार से पहिनने में अधिक कलापूर्ण और सुन्दर हो सकते हैं। कीमती कपड़े यदि उनमें सिलवटें पड़ी हैं, अथवा उनके रङ्ग का योग उचित नहीं है, अथवा वे भोंड़े ढङ्ग से पहिने गए हैं तो वे कला और सौन्दर्य से कोसों दूर हैं। अव्यवस्थापूर्ण कीमती कपड़े पहिने बहुत से आदमियों को तुमने देखा होगा। क्या वे अच्छे मालूम होते हैं? इसी तरह तुम बहुत से धनियों के ड्राइङ्गरूम देखो तो तुम्हें वहाँ बहुत-सी कीमती चीज़ों का ढेर मिलेगा पर उनके संग्रह में न तो कोई साम्य है और न वे एक तरतीब से रक्खी ही गई हैं। उन चीज़ों में आपको कोई एक रुचि या एक विचारधारा देखने को नहीं मिलेगी। बस उन सब का केवल यही तात्पर्य है कि उनके स्वामी के पास पैसा है और पैसे के बल पर उन्हें बन्दी बना दिया गया है। इसीलिये उनमें जीवन नहीं है। परन्तु यदि थोड़ी ही चीज़ों को उचित चुनाव से कलापूर्ण और सुन्दर ढङ्ग से रक्खा और सजाया जाय तो उनमें सौन्दर्य औ. लालित्य की एक प्रभा चमक उठेगी।

तुमने एक कलाकार को एक मूर्त्ति तो बनाते देखा होगा वह खुरदरे भाग को घिस-घिस कर साफ़ कर देता है और प्रत्येक

अङ्ग को छील-छील कर सुगठित और सुन्दर बनाकर और उस पर पालिश करके लालित्य पैदा करता है परन्तु यदि वह बिना छिली मोंड़ी बनी हुई मूर्ति तुम्हारे सामने रख दे तब ? उतना ही वज़न का पत्थर उसमें भी मौजूद है पर उसमें सौन्दर्य्य नहीं है। इसी तरह जीवन में कला और सौन्दर्य की आवश्यकता है। जरूरत है कि तुम अपने जीवन के खुरदरेपन को छीलकर अच्छी प्रवृत्तियों का सौन्दर्य पैदा करो।

चित्रकारी, सङ्गीत अथवा काव्य में यदि तुम्हें दिलचस्पी हो तो उधर उनसे कुछ अपनी प्रवृत्तियों को सुसंस्कृत कर सकते हो परन्तु तुम्हें यह बात ध्यान में रखना चाहिए कि इनका दुरुपयोग भी होता है। विशेष कर सिनेमा, नृत्य और गन्दे साहित्य के नाम पर कला और सौन्दर्य का दुरुपयोग हो रहा है, उससे बचना चाहिए। सिनेमा देखने का मैं विरोधी नहीं हूं पर आजकल जो कुछ विशेष प्रकार के चित्र बन रहे हैं उनसे लाभ के स्थान में हानि ही अधिक होती है।

परन्तु कला और सौन्दर्य्य तो दूसरी चीजों में से तुम्हें लेना चाहिए। कला और सौन्दर्य्य का तो हमें उत्कृष्ट रूप प्रकृति से ही प्राप्त होता है। हमें अपने में यह प्रवृत्ति पैदा करनी चाहिए कि हम प्राकृतिक सौन्दर्य्य में आनन्द का अनुभव कर सकें। हम यह देखें कि कला और सौन्दर्य की अधिष्ठात्री प्रकृति ने अपना शृङ्गार किस तरह चुन-चुन कर किया है।

उसमें हम अपने जीवन में अनेक चीजें ग्रहण करें। हम यह देखें कि प्रकृति किस तरह अपने में व्यवस्था, तरतीब और सौन्दर्य को स्थान देती है।

तुम्हारे जीवन का प्रत्येक अवयव मायमय, सादा और सुरुचिपूर्ण होना चाहिए। तुम्हारी प्रत्येक आदत और दैनिक व्यवहार में कला और सौन्दर्य होना चाहिए। खाने, पीने, उठने, बैठने, मिलने, बात करने, कपड़ा पहिनने, काम करने - सब में एक प्रतिमा होनी चाहिए, भोंडापन, जल्दबाज़ी और बेतरतीबी नहीं। यह बनावट या ऊपरी सजावट से नहीं आता इसके लिए सुरुचि और अच्छी आदतें पैदा करने की आवश्यकता है। एक बार जब भोंडापन निकल जाता है तो प्रतिभा स्वयं आ जाती है।

जब मैं कला और सौन्दर्य की बात करता हूं तो तुम यह भली प्रकार समझ लो कि मेरा उसमें यह मतलब नहीं है कि तुम अपने चारों ओर ऐसा वातावरण पैदा कर लो जो देश की जनता से तुम्हें बिलकुल पृथक कर दे या तुम्हारी शक्ति से बिल्कुल परे हो। मैं कुछ और लिखना चाहता हूं पर पास में बैठा हुआ एक साधारण कैदी अपनी माँगों से मुझे तङ्ग कर रहा है, उसे दूध चाहिए, वह खीर बनाना चाहता है पर यहाँ मैं अपने थोड़े से दूध में से ही इसे दे सकता हूं। लेकिन इन बेचारों को तो कभी दूध मिलता ही नहीं। लम्बी-लम्बी कैद और वही सूखी रोटियाँ!

तुम्हारा पिता।

श्रम की महानता

(७)

प्यारे बेटे,

आज जिस विषय पर मैं तुम्हें लिखने बैठा हूं, जीवन की सफलता का उसमें एक बड़ा रहस्य छिपा हुआ है। आज हम दुनिया को जिस रूप में देखते हैं, वह मनुष्य के श्रम का ही परिणाम है, इसीलिए भगवान् कृष्ण ने गीता में कहा है 'कर्म कारण मुच्यते' कर्म ही कारण है। आखिर यह दुनिया की सम्पत्ति जो हम अपने सामने देखते हैं, वह क्या है? मनुष्य द्वारा किये हुये श्रम का संग्रह ही है। यदि तुम आधुनिक लेखक जैसे एच० जी० वेल्स की 'आउट लाइनस ऑफ दी वर्ल्ड हिस्ट्री' पढ़ो, पं० जवाहर लाल नेहरू की 'विश्व इतिहास की झलक' पुस्तक अथवा कार्ल मार्क्स का 'केपिटल' देखो तो तुम्हें मालूम होगा कि अपने 'श्रम' के बल पर ही दुनिया एक गुफा के जीवन से उठकर वर्तमान् आविष्कारों के युग में आ गई है। आज हम जिन चीजों का उपयोग कर रहे हैं वह मनुष्य के श्रम का ही परिणाम है। ज्ञान,

आविष्कार और सम्पत्ति का अटूट भण्डार मनुष्य ने अपने परिश्रम से ही इकट्ठा किया है।

अङ्गरेजी में एक कहावत है 'श्रम ही ईश्वर की आराधना है'। गीता में भी कहा है 'योगः कर्मसुकौशलम्' कर्म करने का कौशल ही योग है। इसमें सन्देह नहीं बुद्धि का बल बड़ा है पर श्रम के बिना बुद्धि इसी तरह है, जैसे हाथ-पैर के बिना सिर। इसीलिए गीता ने ज्ञान और कर्म का गठबन्धन किया है। दुनिया में जितने बड़े-बड़े सुधारक हुए हैं, उन्होंने श्रम पर बड़ा जोर दिया है। आज विश्वविभूति महात्मा गान्धी चर्खे पर इतना ज़ोर देते हैं पर चर्खा आखिर क्या है? श्रम का एक प्रतीक। उसका हमें एक ही संदेश मिला है 'श्रम करो'। आज वे धनियों को, विद्वानों को चर्खा कातने को कहते हैं। यह क्यों? यदि तुम स्वयं महात्माजी के जीवन को देखो तो तुम्हें मालूम होगा कि वे कितना परिश्रम करते हैं। वे लन्दन में होनेवाली दूसरी गोलमेज़ परिषद् में कांग्रेस के एकमात्र प्रतिनिधि बन कर गए थे। वे दो-तीन घण्टे छोड़ कर दिन-रात काम करते थे और समय मिलने पर चर्खा भी कात लेते थे। वे अपने जीवन के एक-एक मिनट का उपयोग करते थे। दुनिया में जितने महान् पुरुष हुये हैं, यदि तुम उनके जीवन को देखो तो तुम्हें मालूम होगा कि वे साधारण मनुष्यों से कहीं अधिक परिश्रम करते हैं।

दूसरे देशों में बड़े-से-बड़े आदमियों को परिश्रम की आदत

सिखलाई जाती है। रूस का निर्माता पीटर 'महान्' अपने हाथ से लकड़ियाँ चीरता था, इङ्गलैण्ड का युवराज 'प्रिन्स आफ वेल्स' जहाज के इन्जन में अपने हाथ से कोयला झोंकने का काम करता है, और अमरीका के एक धनी का लड़का मज़दूरों में काम करता है। एक भारतीय विद्यार्थी अमरीका में एक मिल में एक स्थान से दूसरे स्थान पर बोझा उठा कर रखने का काम कर रहा था, उसे यह जान कर आश्चर्य हुआ कि उसके साथ जो युवक काम कर रहा था वह करोड़पति मिल-मालिक का लड़का था। उस विद्यार्थी ने एक बार उस मिल-मालिक से इस पर आश्चर्य प्रकट किया पर उस मिल-मालिक ने कहा "इसमें आश्चर्य की बात क्या है ? इसमें सन्देह नहीं कि अधिकांश विशाल सम्पत्ति का एकमात्र अधिकारी मेरा वही लड़का होगा परन्तु मैं यह नहीं चाहता कि वह सम्पत्ति उसमें काहिली पैदा करने का कारण हो। इसमें यदि स्वावलम्बन की भावना पैदा होगी तो यह मज़दूर के बाद मैनेजर और मैनेजर के बाद मालिक बन सकता है।" हमारे देश के धनी इससे शिक्षा ले सकते हैं। हमारे देश में भी इससे पूर्व श्रम का महत्व बहुत बढ़ा था। राजा दिलीप के अपने हाथ से गाय चराने और राजा जनक के हल चलाने पर सीता के उत्पन्न होने की कथाओं का आखिर मतलब क्या है ? कृष्ण भी तो स्वयं गाय चराते थे ? यशोदा माता के पास नौकर चाकर, धन सम्पत्ति की कमी नहीं थी। फिर वह कृष्ण को गाय चराने क्यों भेजती थीं ?

राजाओं के और धनियों के लड़के गुरुओं के आश्रम में साधारण जनता के लड़कों के साथ रहते थे और उनके साथ शिक्षा के अतिरिक्त लकड़ी चीरने, पानी लाने, भोजन बनाने, खेती करने आदि का काम करते थे। यह उनकी शिक्षा का आवश्यक अङ्ग था।

मेरा कहने का तात्पर्य यह है कि जीवन में श्रम एक आवश्यक गुण है और दुनिया में कोई श्रम ऐसा नहीं है जो तुच्छ हो। अङ्गरेजी में एक कहावत है "जूते बनाना लज्जा का कारण नहीं है, लज्जा का कारण तो बुरे जूते बनाना है।" शेक्सपीयर एक गड़रिया था परन्तु उसने जो काव्य लिखे हैं आज दुनिया के सब विद्वान् साहित्यिक उसकी श्रेष्ठता मानते हैं। तुम्हें मालूम है कालिदास एक बड़ा मूर्ख था जो एक पेड़ पर बैठा हुआ उसी तने को काट रहा था परन्तु श्रम से वही एक ऐसा विद्वान् और कवि हो गया कि आज तक उसकी प्रतिभा का दूसरा कोई कवि नहीं हुआ।

आज हमारे देश में श्रम को तुच्छ समझा जाता है, यही कारण है कि हमारे देश का अधःपतन हुआ। आज हम दस्तकारों और हाथ के काम करने वालों को तुच्छ समझते हैं। यदि कोई धनी अपने हाथ से अपना काम करता है तो हम उसे कंजूस कहने लगते हैं। आज तो शान ही इसमें है कि हमारा हर काम दूसरे आदमी करें। जैपुर के एक राजा की बाबत कहा जाता है कि उसे आबदस्त भी दूसरे आदमी कराते थे। यह कैसी दयनीय दशा है ?

आज हम अपने अनेक युवकों को देखते हैं। उनमें शिक्षा है, उन्हें साधन प्राप्त हैं पर फिर भी वे सफलता के पथ से दूर खड़े हैं। अपनी नौका के पाल ताने खड़े हैं पर उन्हें लंगर उठाने का साहस नहीं होता। वे सोचते हैं यदि तूफान आ गया तब? यदि हवा ने उनकी नाव को पलट दिया तब? वस्तुतः बात यह है कि उनमें साहस की कमी है और उन्हें अपने श्रम में विश्वास नहीं है। परन्तु यदि वे लङ्गर को उठाकर अपनी नाव को समुद्र की हिलोरों में छोड़ दें और डांड लेने में जुट जायँ तो वे अपनी नौका को पार ले जायँगे। *साहस, दृढ़ निश्चय और बुद्धिमत्ता से किया हुआ श्रम* जीवन को सफल बनाने का मूल मन्त्र है।

मैं तो तुमसे यही कहता हूं कि परिश्रम करो, परिश्रम करो। जब तुम्हें असफलता के बादल घिरे हुए दिखाई दें तब और अधिक परिश्रम करो। घनघोर घटाएं छिन्न-भिन्न हो जायँगी और आशा का प्रकाश चमकने लगेगा।

तुम्हारा पिता।

नियम और उसका सदुपयोग

(८)

प्यारे बेटे,

तुम देखते हो इस दुनिया से जीवन कितनी तेज़ी से मेल ट्रेन की रफ्तार से बढ़ता चला जा रहा है। यह कल की सी बात मालूम होती है जब तुम्हारी माताजी वैयक्तिक सत्याग्रह में गिरफ्तार हुईं; फिर छोड़ी गईं, मैं गिरफ्तार हुआ और कुछ महीने के लिये छोड़ा गया और फिर गिरफ्तार हुआ और आज बीस महीने से फिर यहाँ हूं, पर इतने में ही तुम्हारे जीवन में कितना परिवर्तन हो गया है ? तुम उस समय एक नासमझ बालक थे परन्तु अब तुम्हारे जीवन का नया पहलू सामने आरहा है, अब तुम दुनिया को समझने और सोचने लगे हो। और फिर भी मालूम होता है कि यह सब कल की बातें हों। इसी तरह हमारे जीवन के भिन्न-भिन्न चित्र सिनेमा की तरह घूम जाते हैं और आश्चर्य से हम आँखें मलते हुए देखते हैं कि हम जिस जीवन-यात्रा पर कुछ ही समय हुआ चले थे देखते-देखते उसकी अन्तिम मंजिल में आ गये हैं और हमारी यह

यात्रा समाप्त ही होने वाली है। ओह ! यह जीवन कितना छोटा है, हमारे पास समय कितना थोड़ा है।

पर क्या हम अपने जीवन के इस थोड़े से समय का सदुपयोग करते हैं ? अङ्गरेजों की हमने बहुत-सी चीजों की नकल की है और उनकी बहुत-सी बुराइयाँ हममें घर कर गई हैं परन्तु हमने उनकी एक अच्छी आदत को नहीं सीखा। वह है उनका समय की पाबन्दी। वास्तव में हमारा न कोई कार्य-क्रम होता है और न समय का विभाजन। जीवन में कितना समय किस में उपयोग करना चाहिये, इस पर हम कभी सोचते ही नहीं। हममें से अधिकांश का उठने-बैठने, खाने-पीने का कोई समय नहीं होता। सब कुछ गड़बड़ है, हमारा जीवन पानी की लहरों पर तैरते हुए लोटे की तरह है, जिधर लहरें आती हैं उस लोटे को बहा कर ले जाती हैं। यह जीवन भी कुछ जीवन है ? हमें समय का विभाजन करना चाहिये और अपने दैनिक-चर्या के लिये समय नियत करना चाहिये। दैनिक-चर्या नियत करना अत्यन्त आवश्यक है परन्तु कागज पर टाइम-टेबिल लिख कर टांग लेने भर से काम नहीं चलता।

नियत दैनिक-चर्या का पालन करने के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि उसका पालन करना हम अपने स्वभाव में डालें। कितने ही युवक अपना कार्यक्रम बनाते हैं। दो-चार दिन उसपर चलते भी हैं पर फिर वह व्यवस्था अपने ढिलमिल कार्य करने से टूट जाती है और फिर वही पुरानी रफ्तार चलने लगती है। हमें अपनी

व्यवस्था के तोड़ने के कितने ही अवसर आते हैं और यदि हम एक बार हटते हैं तो हमारा बांध टूट जाता है, हम उस प्रवाह में बह जाते हैं!

यदि तुम महान् पुरुषों के जीवन को ध्यान से देखो तो तुम्हें मालूम होगा कि वे अपने समय का कितना उपयोग करते हैं। एक बार कहा जाता है कि सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, जो कभी बंगाल के बेताज के बादशाह कहे जाते थे, के घर पर कोई नाटक था, उनके घर पर नाटक होरहा था परन्तु श्री बनर्जी अपने दैनिक कार्य लिखने में लगे थे। प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अपने कार्य-क्रम को कायम रखना ही तो तुम्हारी व्यवस्था की सफलता है। एक-एक मिनट के सदुपयोग से ही तो अनेक महापुरुष अपने जीवन में बड़े-बड़े महान् कार्य कर गये हैं। महादेव गोविंद रानाडे बाल बनवाते में भी अपना अध्ययन करते रहते थे।

व्यावहारिक मनुष्य बहुधा समय को ही वास्तविक सम्पत्ति कहा करते हैं, लेकिन निःसन्देह यह उससे कहीं अधिक मूल्यवान् है, और इसका उचित उपयोग ही आत्मा का विकास और चरित्र का निर्माण है। प्रतिदिन अगर एक घण्टा भी व्यर्थ की बातों में और आपसी खींचातानी के स्थान पर स्वतः कुशलता में लगाया जाय तो कुछ ही वर्षों में एक मनुष्य विद्वान् और कुशल बन सकता है। अगर इससे आगे बढ़ कर मैं कहूँ कि हम इसी समय को अच्छे और पूँजीभूत कार्यों में लगावें तो हमारा जीवन मानवता के

लाभ में एक सक्रिय भाग लेगा और हमारी मृत्यु पर भी हम अच्छे और चमकीले कार्यों की मिल्कियत छोड़ जायेंगे। अगर हम प्रति दिन १५ मिनट भी स्वतः नियन्त्रण में लगायें तो उसका परिणाम हम एक वर्ष में ही अनुभव कर सकते हैं।

मैं एक प्रमुख व्यवसायी को जानता हूं। उन्होंने मुझे 'स्वतः सुधारने' का जो तरीका बताया, वह स्तुत्य था। इन महाशय की शिक्षा बहुत सीमित हुई थी, फिर भी आजकल एक महत्वपूर्ण व्यवसायी हैं, जिनके प्रत्येक कदम का भारत के उस व्यवसाय पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। उन्होंने स्वीकार किया कि उनकी सफलता का बहुत कुछ रहस्य उस व्यवस्था पर निर्भर है जिसे वह निरन्तर व्यवहार में लाते हैं। जहाँ तक मुझे याद है, मैं उन्हीं के शब्दों में तुमसे उस व्यवस्था का उल्लेख करूँगा।

"अनेक वर्षों से मैंने एक पुस्तक रक्खी है जिसमें यह उल्लेख रहता है कि मैंने अमुक दिन किन व्यक्तियों से किस बारे में मुलाकात की। मेरे परिवार के सदस्य यह भली प्रकार जानते हैं कि मैं शनिवार को "स्वतः समीक्षा" में व्यस्त रहता हूं, इसलिए वह मेरे लिए कोई कार्यक्रम नहीं बनाते। खाना खाने के बाद मैं अपने 'अध्ययन के कमरे' में जाता हूं और एक विचारधारा में डूब जाता हूं। मैं अपने से पूछता हूं :—

'मैंने अमुक समय क्या गलती की थी ?'

'मैंने जो कुछ किया क्या वह उचित था, मैं किस प्रकार अपनी कार्य-प्रणाली में सुधार कर सकता हूं ?'

'इस अनुभव से मैं क्या शिक्षा ले सकता हूं ?'

'मुझे ऐसा मालूम होता कि यह साप्ताहिक समीक्षा मुझे अधिक कुशल बना रही है।'

समय का सदुपयोग ही एक महान् चरित्र की विशेषता है, इसके कारण हम कार्य को स्वयं आगे बढ़ाते हैं, न कि स्वयं ढकेले जाते हैं। इसके विपरीत समय का विचार न किये जाने के कारण हम जल्दबाजी, अव्यवस्था और परेशानियों में घिरे रहते हैं जिसका अन्तिम परिणाम हमारी असफलता होती है। नेलसन जो अङ्गरेजों का एक बड़ा एडमिरल था और जिसने नेपोलियन को वाटरलू की लड़ाई में पराजित किया था, उसने एक बार कहा था—"मैं अपने जीवन की सफलता इसमें पाता हूं कि मैं अपने समय से सदैव १५ मिनट आगे रहता हूं" मुझे आशा है कि तुम इस पर विचार करोगे।

मैं प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अपना कर्म रहने करने का अभ्यास डालने का प्रयत्न कर रहा हूं और तुम्हें सुनकर प्रसन्नता होगी कि मुझे इसमें सफलता भी मिली है। यहाँ प्रायः बैरकों में हम इतने पास-पास रहते हैं कि यहाँ पूर्ण शांति होना असम्भव है। कभी २ तो यहाँ बड़ा हल्ला होता रहता है पर मैं अपना काम नहीं छोड़ता। कभी-कभी तो बहुत गम्भीर चिन्तन और लेखन करता रहता हूं। कुछ लोगों को इसमें आश्चर्य भी है। आज मैं जब यह पत्र लिख रहा हूं तो यहाँ व्यवस्था के लिये जो नज़रबन्दों की अपनी कमेटी

है उसका चुनाव है और बड़ी चहल-पहल और कशमकश हो रही है। मेरा ध्यान उधर जाता है पर फिर मैं उसे अपने कर्म की ओर खींचता हूं। मैं इसका अभ्यास कर रहा हूं। मैं चाहता हूं तुम भी इस की आदत डालो।

मैने देखा था कि तुम कभी-कभी फ़जूल की गपशप में समय बहुत बरबाद करते हो। यह हम लोगों में बड़ी बुरी आदत है। हम देखते हैं कुछ लोग किसी काम के लिए निकले हैं पर उस काम को छोड़ कर कहीं गप्पों में बैठ गये हैं। हम अपना समय तो बर्बाद करते ही हैं पर दूसरों के समय की भी हम कोई चिन्ता नहीं करते। मेरा मतलब इससे यह नहीं है कि मित्रों में बैठ कर मनोरञ्जन की बातें नहीं करना चाहिए पर हर समय और हर कहीं गप-शप में लग जाना कुछ अच्छी चीज़ नहीं है।

समय की पाबन्दी तो हममें है ही नहीं। अगर किसी से मिलने का समय नियत हो और हमें उसके पास जाना है तो हम उसके पास समय पर नहीं जायेंगे। अगर वह हमारे पास आता है तो हम उससे वहाँ उस समय मिलने को उपस्थित नहीं हैं अथवा अन्य किसी कार्य में लगे हैं। दो-चार मिनट नहीं, कभी-कभी घण्टे आध-घण्टे का इधर-उधर हो जाना तो हम कोई बात ही नहीं समझते। पर तुम्हीं सोचो कल यदि रेल अपने निश्चित समय की पाबन्दी न करे तो लोगों को कितना कष्ट हो और कितना समय बर्बाद हो। तुम कभी मोटर लारी से तो गए होगे?

इनमें से कुछ का जाने का समय नहीं होता। उसमें सफर करने वालों का कितना समय नष्ट होता है। हमारा जीवन भी इसी बिना समय की मोटर लारी की तरह है। जो काम हम समय की पाबन्दी करके कुछ मिनटों में कर सकते हैं उसमें घण्टे बर्बाद हो जाते हैं। मिलने वाले की इन्तज़ारी में हम बैठे हैं पर वह समय पर नहीं आया और इससे आगे का हमारा सारा कार्यक्रम ही उलट गया। एक गाड़ी के लेट हो जाने से जिस तरह उस लाइन की सभी गाड़ियों के समय में गड़बड़ी पड़ जाती है उसी तरह हम दूसरों के जीवन में भी अव्यवस्था पैदा करते हैं और यही कारण है कि हमारे समाज में समय की पाबन्दी करने में बड़ी कठिनाई उठानी पड़ती है जब कि अङ्गरेज बड़ी सरलता से कार्य में लाते हैं।

तुमने मीटिंग में देखा होगा कि लोग कभी समय पर नहीं आते। संयोजक स्वयं ही जब कि सभा प्रारम्भ करनी होती है उससे कुछ समय पूर्व का समय नियत करते हैं और लोग भी जानते हैं कि ठीक समय पर कभी सभा प्रारम्भ न होगी, इसलिए वे कभी समय पर नहीं जाते। हर सभा में घण्टा आध घण्टा तो लोगों को इकट्ठा होने में लग जाता है और इसमें जो जितनी ज्यादा समय की पाबन्दी करता है उतनी ही इन्तज़ारी उसे ज्यादा करनी पड़ती है। इसके विपरीत मुझे एक बार स्वर्गीय ला० गुलराजगोपाल गुप्ता ने योरुप में एक फ्री मेसन सोसायटी की मीटिंग का हाल सुनाया

था, जिसमें दुनिया के सभी हिस्सों से बहुत से आदमी शामिल हुए थे। तुम यह तो जानते ही हो कि बा० गुलराजगोपाल हमारे दिल्ली के मित्र ला० हंसराज जी गुप्त के पिता थे। यह मीटिंग के समय से कुछ मिनट पूर्व ही पहुँच गये; उस समय वहाँ कोई भी नहीं था। परन्तु ठीक समय पर कुछ चन्द मिनटों में ही सैकड़ों आदमी बिना शोर-शार के अपने-अपने नियत स्थानों पर आ कर बैठ गये और मीटिंग का कार्य प्रारम्भ होगया। इसके विपरीत हमारे यहाँ की मीटिंगें और सभायें राष्ट्र के समय का बड़ा दुरुपयोग है। इसके अतिरिक्त वहाँ हम जिस ढङ्ग से कार्य करते हैं उसमें भी समय का बड़ा दुरुपयोग होता है। हम विषय पर बातचीत न करके बाहर की बातें ज्यादा करते हैं और हमें वहाँ बहुत-सी अनुकरणीय बातें नहीं मिलतीं। मुझे काँग्रेस की मीटिंगों का अनुभव है और खेद है कि वे भी इस बुराई से खाली नहीं हैं।

हम अङ्गरेजों को देखते हैं, एक शिक्षित हिन्दुस्तानी से एक शिक्षित अङ्गरेज अधिक कार्य करता है परन्तु उस अङ्गरेज को फिर भी मनोरञ्जन, खेल-कूद के लिए काफी समय मिल जाता है। इसके विपरीत हिन्दुस्तानी को दम मारने की फ़ुरसत नहीं है। एक हिन्दुस्तानी दुकानदार को देखो वह सुबह आठ बजे से दुकान खोलता है और रात के बारह बजे तक जुटा रहता है पर इसका मतलब यह नहीं है कि उसकी दुकान पर इन सोलह घण्टे भीड़ लगी रहती है, वास्तव में बात यह है कि उन सब ग्राहकों को वह मजे से

चन्द घण्टों में निपटा सकता है। पर हमारा कोई टाइम नहीं है। समय राष्ट्र की सम्पत्ति है और हम इसका अपव्यय कर राष्ट्र की सम्पत्ति का ह्रास कर रहे हैं।

मैं तो चाहता हूं कि जीवन की सफलता के लिये तुम समय के महत्व को समझो और अपने जीवन के एक २ क्षण का उपयोग करो और नियत समय पर अपने सब कार्य करो। यदि तुम यह करते हो तो तुम अपनी ही नहीं राष्ट्र की भी एक बड़ी सेवा करते हो। जब २ समय की अव्यवस्था हो तो उस ओर ध्यान दो और आगे कड़ाई से उस ओर प्रयत्न करने का निश्चय करो। समय के सदुपयोग और पाबन्दी के लिए मैं तुम्हें एक कार्य की बात बताना चाहता हूं। प्रातःकाल उठते ही ईश्वर का ध्यान करो। फिर अपनी दैनिक डायरी में देखो कि आज तुम्हें क्या २ कार्य करने हैं। इस तरह की एक डायरी रखना समय की बचत और पाबन्दी के लिए बहुत जरूरी है। रात को सोते समय फिर यह देखलो कि जो २ कार्य तुमने नियत किये थे वह हुए या नहीं। जो कार्य न हुए हों उन्हें कल के कार्यक्रम में लिखलो और अन्त में नये कार्य लिखकर कल का कार्यक्रम पूरा कर लो। सभा, मीटिंग, व्यक्तियों से मुलाकात आदि में जो समय नियत करो यह जिस तारीख को नियत हो उस तारीख में डायरी में दर्ज करलो। नियत तारीख को जब अपनी डायरी में देखोगे तो तुम्हें उसका ध्यान तुरन्त आ जायगा और इस तरह वह तुम्हारे उस दिन के कार्यक्रम में दर्ज हो जायगा।

जो लोग समय की पाबन्दी न करके असमय में आकर तुम्हारे कार्यक्रम को उलट-पुलटने का कष्ट करें, तो उनसे ऐसा करने से इन्कार कर दो।

तुम्हारा पिता।

नारी क्या ?

(१)

प्यारे बेटे,

आज मैं जिस विषय पर तुम्हें लिखने बैठा हूं सामाजिक दृष्टि से वह बड़े महत्त्व का है। पुरुष और स्त्री के संयोग से ही समाज बना है, दोनों का समाज में एक महत्त्व-पूर्ण स्थान है। हम इस बात को पूरी तरह महसूस नहीं करते कि हमारे जीवन पर—स्त्रियों और पुरुषों पर—एक दूसरे का कितना प्रभाव पड़ता है। यदि स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध उचित आधार पर स्थापित न हो तो न तो समाज ही और न हमारा व्यक्तिगत जीवन ही सुचारु रूप से चल सकता है, उसमें विषमता उत्पन्न होने से हमारे जीवन का माधुर्य ही नष्ट हो जाता है। इस पर भी हम इस विषय में कितनी जानकारी रखते हैं या रखने की चेष्टा करते हैं ? वास्तव में बात यह है कि आज इस विषय पर बातचीत करना ही बुरा समझा जाता है। माता-पिता, गुरुजन इस सम्बन्ध में चुप रहते हैं और युवक और युवतियों को इस सम्बन्ध में जो भी आभास प्राप्त होता है वह उन मार्गों से जो न तो पूर्ण हैं और न श्रेयस्कर ही। परिणाम यह है कि स्त्री-

पुरुष के सम्बन्ध में जो हमारे विचार हैं, वह अपूर्ण ही नहीं भयावह हैं।

मैं जब स्त्री और पुरुष की बात कहता हूं तो मेरा मतलब केवल पति-पत्नी से नहीं है। स्त्री जाति में पत्नी है तो माता, बहिन, लड़की भी हैं और पुरुष में पति है तो पिता, पुत्र और भाई भी हैं। आर्य-आदर्श ही यह है कि वह स्त्री जाति में पत्नी के साथ ही माता, बहिन और पुत्री को भी उतना ही महत्त्वपूर्ण स्थान देता है और पति के साथ ही पिता, पुत्र, भाई, श्वसुर आदि को भी सन्माननीय स्थान देता है। पत्नी का प्रेम महान् है परन्तु माता, बहिन और पुत्री का प्रेम और स्नेह जीवन में कम मूल्यवान् वस्तु नहीं है। इनको यथा उचित स्थान पर स्थापित करना ही हमारे जीवन की सफलता है।

आखिर स्त्री क्या है? पुरुष क्या है? उनका सम्बन्ध केवल विषय-विलास की चीज़ ही नहीं है। स्त्री और पुरुष एक दूसरे की कमियों को पूरा करते हैं। पुरुष में दृढ़ता है, साहस है, परिश्रम है, बल है, परन्तु साथ ही वह क्रूर है, अक्खड़ है, अड़ने वाला है। स्त्री में दया है, मधुरता है, स्नेह है, त्याग है, भावना है, पर साथ ही वह निर्बल है, भीरु है, चञ्चल है। एक दूसरे से ही समाज पूर्ण होता है और हम अपने जीवन में एक दूसरे से अपनी कमी को पूरी करते हैं और प्रेरणा प्राप्त करते हैं। इसमें सन्देह नहीं स्त्री और पुरुष में विभिन्नता होने के कारण एक दूसरे के लिए वे रहस्यमय हैं और यह

उनके आकर्षण का कारण भी हो सकता है। परन्तु यह हमें अधःपतन के गर्त में गिराने का कारण नहीं होना चाहिये।

मनु ने कहा है 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः' जहाँ स्त्रियों की पूजा होती है वहाँ देवता रमण करते हैं। इसका क्या तात्पर्य है? इसमें सन्देह नहीं योरुप में स्त्रियों का बड़ा मान होता है। मेरे एक मित्र अपनी स्त्री और लड़की के साथ योरुप गये, वे जहाँ २ गये उन्होंने स्त्रियों का बड़ा सम्मान देखा। स्त्रियों का वे बड़ा सम्मान करते हैं। रेलगाड़ियों, बसों में पुरुष स्वयं अपना स्थान एक स्त्री के लिये खाली कर खड़े हो जाते हैं। रङ्ग-भेद होने पर भी सब स्थानों पर उनकी पत्नी और स्त्री के लिए पुरुष सदैव यह सम्मान प्रकट करते थे। यह सब बातें हमें उनसे सीखने की हैं। तुमने हिन्दुस्तानी रेलों में स्त्रियों को खड़ा चलते और पुरुषों को पूरी २ सीट पर तान दुपट्टा सोते हुए देखा होगा, तुमने पुरुषों को भीड़ में धक्कामुक्की करके आगे निकलते भी देखा होगा। यह सब बहुत बुरा है। यह हमारे आचरण की एक निर्बलता प्रकट करता है।

परन्तु योरुप में जो स्त्रियों के लिए सम्मान है वह बहुत कुछ ऊपरी है। वह हमारे लिए आदर्श नहीं हो सकता। जिस समाज का आर्थिक ताना-बाना स्त्रियों को एक आर्थिक आधार पर संघर्ष करने के लिए ला खड़ा करता है, वह हमारे लिए आदर्श नहीं हो सकता। जहाँ हम एक ओर इस देश में घर की चहारदीवारी में स्त्री जाति को बन्दी देखते हैं तो दूसरी ओर हम लड़कियों और

नवयुवतियों को दिन में दस २ घंटे दुकानों पर सेल्स की मेजों पर खड़ा होते और अपना सौन्दर्य्य नष्ट करते हुए देखते हैं तो हमें अनुभव होता है कि यहाँ भी सब कुछ ठीक नहीं है। पुरुष समाज ने घर की गुलामी से तो उसे मुक्त कर दिया है पर उस पर मानसिक गुलामी लाद दी है। आखिर दिन-रात पुरुषों के सामने अपने को आकर्षक बनाने की चिन्ता क्या है? बनावट और कृत्रिमता में उन्होंने अपनी आत्मा को पीस दिया है। क्या प्रत्येक स्त्री को तितली बनना और एक पुरुष को देखते ही एक विशेष प्रकार की बनावटी आकर्षक आकृति बनाना पसन्द है? नहीं, पर वहाँ के समाज के लिए यह आवश्यक है, इसके लिये ही उन्हें, 'डिपोर्टमेंट'—सामाजिक शिष्टाचार की शिक्षा दी जाती है।

हमारे प्राचीन नीतिकारों ने हमारे सामने यह आदर्श रक्खा था "स्त्री समाज को अपनी माता और बहिन की तरह आदर और पूज्य दृष्टि से देखो" यदि इस नियम को व्यावहारिक रूप दिया जाय तो इससे अच्छा स्त्री और पुरुष को समझने का दूसरा आदर्श नहीं हो सकता। अपनी माता और बहिन को समझना कितना सरल है। तुम जिन स्त्रियों के सम्पर्क में आओ अगर उनको तुम माता और बहिन की दृष्टि से देखो तो तुम उनके बहुत समीप आ जाते हो। तुम उनकी विचारधारा के स्रोत में एक डुबकी लगा सकते हो और उनकी मृदुलता, भावुकता और सौन्दर्य्य का भी आनन्द ले सकते हो। अपनी सुन्दर बहिन को देख कर कौन भाई प्रसन्न नहीं होता।

जब तक यह भावना पैदा न होगी तब तक न तो तुम उनकी उपस्थिति में स्वभाविकता का ही अनुभव करोगे, न उनके स्वाभाविक गुणों का आनन्द प्राप्त कर सकोगे, और न तुम उनके प्रति ही न्याय कर सकोगे।

मैं इसका पक्षपाती नहीं हूं कि स्त्री और पुरुषों को एक दूसरे से बिल्कुल ही पृथक रहना चाहिये। परन्तु मैं इसका भी समर्थक नहीं हूं कि उन्हें आवश्यकता से अधिक मिलना-जुलना चाहिये। इस सम्बन्ध में अधिक लिखना आवश्यक नहीं है, मैं यहाँ सूक्ष्म रूप से तुम्हें कुछ नियम बताता हूं, जिनका तुम्हें पालन करना चाहिये:—

१—स्त्री जाति के प्रति सम्मान के भाव रक्खो।

२—यदि कभी किसी स्त्री के प्रति बुरे विचार हृदय में पैदा हों तो अपनी माता या बहिन को उसमें देखने की चेष्टा करो।

३—किसी स्त्री से एकान्त में अधिक समय तक बात मत करो।

४—स्त्रियों को शयन करते और स्नान करते देखो तो आँखें नीची करलो।

५—गन्दे चित्र, सिनेमा, पुस्तकें आदि मत पढ़ो।

६—स्त्रियों को अपने आगे स्थान दो, उनसे प्रतिद्वन्द्वी भाव पैदा मत करो।

७—उनसे बोलचाल में नम्रता का व्यवहार करो।

८—उनकी भावनायें बड़ी तीव्र और सूक्ष्म होती हैं, उन्हें समझने की चेष्टा करो।

९—उनके सौन्दर्य्य का उसी पवित्रता से आनन्द उठाओ, जिस तरह अपनी एक सुन्दर बहिन के सौंदर्य को देख कर प्रसन्न होते हो—वह उस पुष्प के समान है जिसका सौन्दर्य्य देख कर प्रशंसा करने की चीज़ है, छूने और तोड़ने की चीज़ नहीं।

१०—उनसे मांगो मत पर उनका सम्मान भी करो।

तुम्हारा पिता।

"संसार के समस्त ऐश्वर्य और वैभव की अधिष्ठात्री लक्ष्मी के रूप में नारी शक्ति ही है। विद्वता और मनस्विता के कारण विश्व-विख्यात प्रतिष्ठा की दात्री भी सरस्वती के रूप में नारी शक्ति ही है। संसार के प्राणियों के पोषण करनेवाली शक्ति के रूप में वही नारी अन्नपूर्णा है।"

जीवन में धन का स्थान

(१०)

प्यारे बेटे,

यदि तुम अपने चारों ओर देखो तो तुम्हें मालूम होगा कि दुनिया धन की खोज में दौड़ी जा रही है। वकील, डाक्टर, लेखक, सम्पादक, व्यापारी इञ्जीनियर, मजदूर, किसान, मूर्ख, पण्डित सब धन की दौड़ में पागल हो रहे हैं। जिनके पास धन नहीं है केवल वही नहीं, जिनके पास अटूट धन है वे तो उसके पीछे और भी पागल हैं। यह देखो! यह सेठजी हैं, इनका बैंकों में लाखों रुपया पड़ा है, इनके तहखाने सोने-चाँदी से भरे पड़े हैं, इनके इतने मकान हैं कि स्वयं कभी जीवन में उन सब मकानों को देखने भी नहीं गये पर फिर भी दिन-रात 'हाय पैसा, हाय पैसा' करते ही बीतता है, इन्हें दम मारने की फुरसत नहीं है, दिन-रात जो धन-संग्रह किया है उसका हिसाब करते २ और उसकी रक्षा की चिन्ता करते २ ही परेशान हैं। मोटर, कोठी, टेलीफून, नौकर-चाकर सब कुछ हैं। कोठी से निकलते और घुसते दरवाजे पर खड़ा एक वर्दी पहने बन्दूकधारी

८—उनकी भावनायें बड़ी तीव्र और सूक्ष्म होती हैं, उन्हें समझने की चेष्टा करो।

९—उनके सौन्दर्य का उसी पवित्रता से आनन्द उठाओ, जिस तरह अपनी एक सुन्दर बहिन के सौंदर्य को देख कर प्रसन्न होते हो—वह उस पुष्प के समान है जिसका सौन्दर्य देख कर प्रशंसा करने की चीज़ है, छूने और तोड़ने की चीज़ नहीं।

१०—उनसे मांगो मत पर उनका सम्मान भी करो।

तुम्हारा पिता।

"संसार के समस्त ऐश्वर्य और वैभव की अधिष्ठात्री लक्ष्मी के रूप में नारी शक्ति ही है। विद्वता और मनस्विता के कारण विश्व-विख्यात प्रतिष्ठा की दात्री भी सरस्वती के रूप में नारी शक्ति ही है। संसार के प्राणियों के पोषण करनेवाली शक्ति के रूप में वही नारी अन्नपूर्णा है।"

जीवन में धन का स्थान

(१०)

प्यारे बेटे,

यदि तुम अपने चारों ओर देखो तो तुम्हें मालूम होगा कि दुनिया धन की खोज में दौड़ी जा रही है। वकील, डाक्टर, लेखक, सम्पादक, व्यापारी इञ्जीनियर, मजदूर, किसान, मूर्ख, पण्डित सब धन की दौड़ में पागल हो रहे हैं। जिनके पास धन नहीं है केवल वही नहीं, जिनके पास अटूट धन है वे तो उसके पीछे और भी पागल हैं। यह देखो! यह सेठजी हैं, इनका बैंकों में लाखों रुपया पड़ा है, इनके तहखाने सोने-चाँदी से भरे पड़े हैं, इनके इतने मकान हैं कि स्वयं कभी जीवन में उन सब मकानों को देखने भी नहीं गये पर फिर भी दिन-रात 'हाय पैसा, हाय पैसा' करते ही बीतता है, इन्हें दम मारने की फुरसत नहीं है, दिन-रात जो धन-संग्रह किया है उसका हिसाब करते २ और उसकी रक्षा की चिन्ता करते २ ही परेशान हैं। मोटर, कोठी, टेलीफून, नौकर-चाकर सब कुछ हैं। कोठी से निकलते और घुसते दरवाजे पर खड़ा एक वर्दी पहने बन्दूकधारी

नौजवान फर्शी सलाम करता है पर इनके जीवन में एक चीज़ की कमी है वह 'सुख और शान्ति'। यह एक दूसरे धनी हैं, इन्हें लाखों रुपये साल की आमदनी है, इन्हें कुछ नहीं करना है, केवल एक चेक पर दस्तखत करने से ही जीवन के सुख के सारे साधन उपस्थित हो जाते हैं, इन्हें कुछ करना नहीं पड़ता पर कोचों की मखमली गद्दियों को तोड़ते २ इनका स्वास्थ्य ही टूट चुका है, यह सदैव रोगी रहते हैं। एक निर्धन को सूखी रोटी में जो मज़ा आता है वह उन्हें सजी हुई बीसियों प्लेटों में नहीं आता। यह एक और धनी हैं इनके पास पैसा बहुत है पर यह दो सूखी रोटी से अधिक नहीं खा सकते, डाक्टरों ने उन्हें घी खाना बिलकुल बन्द करा रक्खा है। हाँ। ऐसे भी धनी हैं जो खूब कमाते हैं और भोग विलास में खूब फूँकते हैं, वे कमाने और खर्च करने की मशीन हैं पर उसका परिणाम ? यदि तुम उनसे बात करो तो तुम्हें मालूम होगा कि उनका जीवन भी रिक्त सा ही है, फिर भी वे धन कमाने में लगे हैं। यह वकील साहब हैं, सड़ से सड़े मुकद्मे को भी अपनी फ़ीस के लिये लड़ाने की ही सलाह देते हैं, यह वैद्यजी रोगी को इसलिए हिलगाये हुये हैं ताकि उससे जितना पैसा निकाल सकें निकालें। यह लेखक हैं, बराबर पुस्तकें लिखते जाते हैं, इसलिये नहीं क्योंकि इन्हें दुनिया को कोई नई बात बतानी है। बस, इसलिए क्योंकि यह पाठकों की जेब से और पैसा निकालना चाहते हैं। पंडितजी लालाजी के लिए *ध्वनि-मग्न हो पाठ कर रहे हैं क्योंकि उन्हें लालाजी की सन्दूक में* से पैसा निकालना है।

दुनिया में जब पैसे की चारों ओर मार-धाड़ मची हुई है तब हमें यह सोचना जरूरी है कि आखिर हमारे जीवन में धन का क्या स्थान है ? मैंने तुम्हें अपने एक पत्र में लिखा था कि धन प्राप्त करना स्वयं बुरा नहीं है, यदि वह उचित उपयोग के लिए उचित साधनों से प्राप्त किया जाय, वरन मैं कहूंगा कि मनुष्य को धन अर्थात् जीवन यापन के आवश्यक साधन प्राप्त करना एक कर्त्तव्य है। हमारे शास्त्रकारों ने मनुष्य जीवन के चार आधारभूत कारण बताये हैं— धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। धर्म और अर्थ का केवल तात्पर्य पैसे या नोट से ही नहीं है। कार्ल मार्क्स ने सम्पत्ति का समाजीकरण करने की बात कही है पर उससे सम्पत्ति—अर्थ—का रूप बदल जाता है। फिर भी यह प्रश्न तो रह ही जाता है कि समाज में और व्यक्ति के जीवन में अर्थ अर्थात् संसार के भौतिक साधनों के उपभोग में ला सकने की शक्ति की आवश्यकता कहाँ तक है ?

आज हमारे सामने प्रश्न उठता है, धन कमायें तो सही पर किस लिए ? धन कमाना ही हमारा लक्ष्य नहीं हो सकता। कोई भी समाज जो केवल भौतिक पदार्थों के उपभोग करने के लिए स्थापित किया जाय, वह आदर्श समाज नहीं हो सकता। हम धन—भौतिक साधनों को—धन के लिए कमाने की प्रवृत्ति को, चाहे वह व्यक्तिगत रहे चाहे उसे समूचे समाज के अन्तर्गत करदें हमारे लिए पूर्ण रूप से एकमात्र लक्ष्य नहीं हो सकती।

एक बात तो निश्चित है कि हमारे जीवन का—व्यक्ति और

समाज के जीवन का—लक्ष्य धन कमाना या भौतिक साधनों को इकट्ठा करना मात्र नहीं है। धन किसी अन्य चीज़ को प्राप्त करने का साधन मात्र है, धन एक शक्ति है जिसके द्वारा हम एक वाञ्छनीय वस्तु को प्राप्त कर सकते हैं। इसलिए पहली बात जो हमें समझना आवश्यक है वह यह है कि हमारा जीवन केवल धन-संग्रह करने के लिए नहीं, वह लक्ष्य—ध्येय—नहीं एक साधन है। हमारा जीवन भौतिक साधनों के उपभोग के बिना एक मिनट भी नहीं चल सकता है, इसलिए ये आवश्यक साधन हैं, पर हमारे जीवन का एकमात्र लक्ष्य नहीं है। धन, संपत्ति हमारे लिए है हम धन संपत्ति के लिए नहीं। हमारा जीवन धन, सम्पत्ति के संग्रह तक ही नहीं, उससे आगे भी है। लेकिन जिस मनुष्य ने आंग्ल साहित्य पर अपनी स्वस्थ विचारधारा से अपरिमित प्रभाव डाला था, अपनी पुस्तक "क्राउन आफ़ दि वाइल्ड ओल इव" में धन के स्वरूप पर बहुत ही विशद् और सारगर्भित प्रकाश डाला है। एक स्थान पर वह लिखता है "जिस प्रकार कि मनुष्य खाने को ही अपने जीवन का मूल लक्ष्य नहीं बनाता, उसी प्रकार शिक्षित, चेतनाशील, और विशाल हृदय वाले मनुष्य "अर्थ" को भी अपने जीवन का एकमात्र उद्देश्य नहीं समझते। प्रत्येक स्वस्थ व्यक्ति भोजन को पसन्द करता है, परन्तु इस पर भी भोजन उसके जीवन का एकमात्र लक्ष्य तो नहीं होता। इसी प्रकार स्वस्थ चिन्तनवाले व्यक्ति रुपया पसन्द अवश्य करते हैं और उसके स्वामित्व पर उन्हें रोमांच भी काफ़ी होता है और

होना भी चाहिये परन्तु रुपये से भी मूल्यवान् वस्तुयें हैं जो उनके जीवन को एक निश्चित धारा की ओर ले जाती हैं।

एक अच्छा सैनिक, उदाहरण के लिये, युद्ध में अपने कर्त्तव्य की पूर्ति पर अधिक ज़ोर देता है। वह अपने वेतन मिलने पर प्रसन्न अवश्य होता है—इस पर भी उसकी इच्छा तो युद्ध के जीतने में होती है। यही डाक्टरों पर भी लागू होता है। वह अपनी फ़ीस चाहते हैं, इसमें सन्देह नहीं। लेकिन फिर भी वह अपने रोगियों को अच्छा करने की कामना भी करते हैं और अगर उनसे कहा जाय कि आप या तो फ़ीस न लें और अगर लें तो रोगी को ज़हर दे दें तो वह फ़ीस न लेकर रोगी को ठीक करना अच्छा समझेंगे बजाय इसके कि वह रोगी को मार डालें।"

इसमें सन्देह नहीं कि बहुत से व्यक्ति पैसे को आवश्यकता से अधिक महत्व देते हैं। मुझे मेरे एक मित्र ने अपना अनुभव सुनाते हुए एक बार कहा—"मैं एक डाक्टर के यहाँ गया, मेरे गले के 'टान्सिल' बढ़े हुए थे। डाक्टर ने मेरे टान्सिल की तरफ़ एक निगाह फेरते हुए पूछा—'आप क्या काम करते हैं?' मुझे बहुत बुरा लगा, यह स्वाभाविक था। डाक्टर साहब मेरे टान्सिल में दिलचस्पी नहीं ले रहे थे वरन् उनका ध्यान इस ओर था कि मेरी जेब में कितने पैसे हो सकते हैं और वह कितना मुझसे एँठ सकते हैं। मैं उनके इस व्यवहार से बहुत खिन्न हुआ और तत्काल एक अजीब घृणा का भाव लेकर उनकी दूकान से बिना कुछ कहे उठ कर चला

आया" इसलिये प्रत्येक उचित रूप से शिक्षित मनुष्य के लिए कर्म प्रधान है और धन महत्वपूर्ण अवश्य है लेकिन उसका स्थान द्वितीय है।

आज जब धन के लिए शोषण और अनाचार का बोलबाला है, उस समय हमें टैगोर की भाँति अपने से पूछना है—"जोड़ते ही जोड़ते जाने से क्या लाभ? स्वर की ऊँचाई या मात्रा बढ़ाने से हमें चीख के अतिरिक्त कुछ नहीं मिल सकता। स्वर को संयत रख और उसे पूर्ण रूप से मधुरता देकर ही हम स्वर्गीय संगीत प्राप्त कर सकते हैं।"

मैं यहाँ तुम्हें यह नहीं लिखने जा रहा हूँ कि इस प्रकार के धन एकत्रीकरण की भावना ने किस प्रकार समाज में अव्यवस्था और शोषण को जन्म दे रक्खा है, यह तो विस्तृत रूप में फिर कभी लिखूँगा, पर यह तो निश्चय है कि पैसे की हविश हमारी एक भ्रान्ति भावना का परिणाम होती है, बर्नार्ड शा ने एक स्थान पर लिखा था—"पैसा भूख मिटा सकता है लेकिन दुख नहीं मिटा सकता।" धन पेट की ज्वाला शान्त कर सकता है, आत्मा की पीड़ा नहीं दूर कर सकता। सुख और दुख हमारे दृष्टिकोण के विभिन्न पहलू हैं, धन का उनसे अधिक सम्बन्ध नहीं।

धन हमारे लिए है हम धन के लिए नहीं। भोग हमारे लिए हैं, हम भोगों के लिए नहीं। यदि हम इस मन्त्र को समझ लें तो हम जीवन के अनेक मोड़ों पर गुमराह हो जाने से बच सकते हैं।

मुझे विश्वास है कि तुम अपनी आत्मा को धन और भोगों से ऊपर रख सकोगे। उनका उपभोग करते हुए भी उनमें भूल कर पथ-भ्रष्ट न होगे।

तुम्हारा पिता।

———

कार्य करने की एक विशेष पद्धति

(११)

प्यारे बेटे,

तुमने तैराकों को आप यमुना में तैरते हुए देखा होगा। एक तैराक का सारा शरीर पानी में डूबा रहता है परन्तु वह अपने सिर, आँख, नाक, मुँह, कान को पानी की सतह से ऊपर रखता है। उसके हाथ पैर—सारा शरीर पानी के भीतर ही पानी से तुमुल-युद्ध करता रहता है परन्तु वह मस्तिष्क को स्वतन्त्र रखता है। पानी की लहरों से खेलता है, कभी-कभी वे उसके सिर पर चढ़ कर उसे ढक लेती हैं, और फिर वह अपने माथे को पानी के प्रवाह से मुक्त कर लेता है। परन्तु यदि वह अपने सिर को पानी से ऊपर न रख सके तब? यदि वह उनको अपने पर विजय प्राप्त कर लेने दे तब? ऐसी हालत में क्या वह उनका आनन्द ले सकता है? क्या पानी के भीतर उसका दम ही न घुट जायगा?

यह सब क्या है? हमें इससे क्या शिक्षा मिलती है? यह दुनिया एक विशाल सागर की भाँति है। यहाँ सुख, दुःख, सफलता, असफलता, धन, गरीबी सब भिन्न २ उसकी तरगें हैं। यदि हमें

इसमें सफल तैराक बनना है तो हम क्या करें ? हम उनके साथ खेलें या स्वयं उनके खिलवाड़ बन जाँय ? जीवन में सफलता का रहस्य क्या है ? शांति और सुख कहाँ हैं ? इस विषय में हमारे लिए यही एक शिक्षा है कि हम जब धन प्राप्त करने, विजयी होने, यशोपार्जन करने की दौड़ में दौड़े जा रहे हैं उस समय हम अपने मस्तिष्क को इनसे ऊपर रक्खें। हम सफलता, असफलता, विजय, पराजय, लाभ, हानि की लहरों से खेलें पर अपनी आत्मा को उसमें डूबने न दें, वे मनोरञ्जन की चीजें हों, हम स्वयं ही उनके मनोरञ्जन के साधन न बन जाँय। कार्य करने की यह एक विशेष पद्धति है।

गीता में भगवान् कृष्ण ने अनासक्ति योग का उपदेश दिया है, यह उपदेश क्या है ? क्या यह उपदेश केवल साधु-सन्यासियों के लिए ही है ? क्या अनासक्ति का अर्थ केवल दुनिया से वैराग्य ही है ? क्या हमारे गृहस्थ और सांसारिक जीवन में उसका कोई मूल्य नहीं है ? क्या उसमें कोई वस्तु है जिसका हम अपने दैनिक जीवन में प्रयोग कर सकते हैं ? अथवा यह कोई पढ़ने लिखने और दर्शन के तर्क-वितर्क का ही विषय है ? नहीं, उसमें एक सन्देश है जिसका उपयोग हर युवक अपने दिन प्रति दिन के व्यावहारिक जीवन में कर सकता है।

योग क्या है ? कृष्ण स्वयं उत्तर देते हैं "योग: कर्मसु कौशलम्" कर्म करने के कौशल को ही योग कहते हैं। यानी कर्म करने की बुद्धिमत्ता को ही योग कहते हैं। यह कौशल क्या है ? तैराक को

जिस तरह तैरने में योग है उसी तरह मनुष्य को अपने जीवन में होना चाहिये। जिस तरह तैराक पानी में खेलते हुये भी उससे अनासक्त रहता है, उसमें डूबता नहीं, अपने मस्तिष्क को स्वतन्त्र रखता है, उसी तरह यदि हम अपने जीवन में धन, वैभव, इच्छाओं से खेलते हुये भी उनमें डूबें नहीं, अपने मस्तिष्क को स्वतन्त्र रक्खें, उनमें आसक्त न हों तो हम गीता के इस उपदेश को क्रियात्मक रूप में ले आते हैं।

आधुनिक विद्वान् श्री हक्सले ने end and means नामक पुस्तक में इस विशेष कार्य-पद्धति का प्रतिपादन किया है। भारतीय जीवन के आधुनिक दार्शनिक सर इक़बाल ने भी इस पद्धति की तारीफ़ की है।

गीता में कितना सुन्दर कहा गया है—'साम्ये स्थितमनः' अपने मन को साम्य स्थिति में रक्खो। 'सम दुःख-सुख धीर' दुःख-सुख को समान समझो, 'सिद्ध्यासिद्ध्योः समोभूत्वा' सफलता और असफलता को समान समझो। 'तुल्य निन्दा स्तुतिर्मौनी' निन्दा और स्तुति यानी प्रशंसा को समान समझो। 'मानापमानयो :' मान और अपमान में सम बुद्धि रक्खो। आदि आदि।

कृष्ण कहते हैं :—

आपूर्यमाणमचलं प्रतिष्ठं
समुद्र मापः प्रविशन्ति यद्वत्।
तद्वत कामा यं प्रविशन्ति सर्वे
स शान्ति माप्नोति न काम कामी।

समुद्र में अथाह जल होता है- गम्भीर और अचल प्रतिष्ठा वाला। अनेक नदी उसमें गिर कर समा जाती हैं परन्तु क्या उसमें कोई उद्वेग पैदा होता है ? तुमने अनेक नालों को थोड़ा-सा बरसात का पानी आ जाने पर शोरगुल करते हुए देखा होगा, बढ़ते हुए देखा होगा, पर समुद्र सैकड़ों नदियों के मिलने पर भी अपनी पूर्व प्रतिष्ठा ही स्थापित रखता है । इसी तरह कर्मयोगी मनुष्य सफलता, असफलता, जय, पराजय, मान, अपमान इन सबके आने पर भी गम्भीर समुद्र की तरह बहते रहते हैं।

कृष्ण फिर कहते हैं :—

तस्माद् सक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर.।
आसक्तोह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः ॥

अर्जुन ! इससे तू अनासक्त पुरुष हुआ, निरन्तर. कर्त्तव्य-कर्म का आचरण कर, क्योंकि अनासक्त पुरुष कर्म करता हुआ परमात्मा को प्राप्त होता है । कृष्ण यह नहीं कहते 'तू कर्म छोड़ कर संन्यास ले ले' । वह यह कहते हैं 'कर्म कर परन्तु उसके परिणाम में आसक्त मत हो । पानी की लहरों से खेल परन्तु अपने मस्तिष्क को उससे ऊपर रख, उनमें अपने को डुबो मत' ।

यह सब क्या है ? क्या यह सब केवल कहने और सुनने की ही चीज़ है ? क्या इसका व्यावहारिक जीवन से भी कुछ सम्बन्ध है ? उसका हमारे जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है ? कार्य करने की यह व्यावहारिक कला है, इसको समझना चाहिये ।

तुमने राजा भर्तृहरि का नाम तो सुना होगा। इन्होंने तीन बड़े सुन्दर शतक—नीतिशतक, वैराग्य-शतक और शृङ्गार-शतक लिखे हैं। उन्होंने एक जगह लिखा है हम भोगों को भोगने चले थे पर हम स्वयं भुगत गये हैं। ऐसा क्यों है? अनेक मनुष्य अपनी वृद्धावस्था में पश्चात्ताप करते दिखाई देते हैं। उसका कारण क्या है? वे अपने जीवन के एक पहलू में ऐसे डूब गये कि वह अपने मस्तिष्क को स्वतन्त्र नहीं रख सके।

अब आओ जरा हम अपने जीवन के व्यावहारिक रूप में इसे देखें। हमारे कार्यों में फलाशक्ति न रखने से क्या असर पड़ता है? हम एक कार्य करते हैं, उसके दो ही परिणाम हो सकते हैं, उसमें हमें सफलता मिले, असफलता मिले, हमारी निन्दा हो, प्रशंसा हो, हमें दुःख मिले या सुख मिले। हमारे कामों के यही स्वाभाविक परिणाम हैं और कितनी ही बार उन पर हमारा कोई अधिकार नहीं होता, हमारे प्रबल प्रयत्न करने पर भी उसका विपरीत परिणाम होता है। जो हम चाहते हैं उसके विपरीत परिणाम होना ही हमारा दुःख है। दुःख की विशेष स्थिति नहीं है। हमारा मन जिसकी आकांक्षा करता है उसका प्राप्त न होना ही हमारा दु.ख है, इसलिये दुःख हमारी मानसिक क्रिया है। उस मानसिक क्रिया को उचित रूप देना ही गीता का कर्मयोग है।

यदि हम कर्म के फल में समत्वदृष्टि रख सकें तो उसका हमारी कार्य-प्रणाली पर क्या प्रभाव पड़ेगा? हम पश्चात्ताप और दु.ख में जो

अपनी शक्ति नष्ट करते हैं, उसमें अपनी आत्मा को गलाते रहते हैं वह शक्ति हमें दूसरे कार्मों को करने के लिये बच जायगी। असफलता पर असफलता आने पर भी जो मनुष्य अपने कर्मों से विचलित नहीं होता और न उससे दुःखी होता है वही यथार्थ कर्मयोगी है। 'गुरुणा दुःखेन अपि न विचाल्यते' जिसका मन भीषण से भीषण दुःख पड़ने पर भी विचलित नहीं होता ऐसा मनुष्य अपने जीवन में महान् कर्म कर सकता है इसमें क्या सन्देह है। नीतिकारों ने भी कहा है :—

> सुखमापतितं सेव्यं दुःखमापतितं तथा ।
> चक्रवत्परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च ॥

अनेक बार जीवन में ऐसी घटनायें घटती हैं जिससे एक क्षण में हमारा महान् परिश्रम नष्ट हो जाता है, वर्षों का बना हुआ भवन घण्टों में गिर पड़ता है। यह अवसर ही मनुष्य की परीक्षा का समय होता है। मेरे ही जीवन में अनेक बार ऐसे अवसर आये हैं। इस बार ही गिरफ्तार होने से पूर्व एक कार्य में कोई पचास हज़ार रुपये का लाभ था, अगर एक हफ्ता बाद मैं गिरफ्तार होता तो आवश्यक लिखा-पढ़ी सब पूरी होकर काम पूरा होगया होता, परन्तु ठीक अवसर पर गिरफ्तारी होने पर लिखा-पढ़ी पूरी न हो सकी, मामला अधूरा रह गया अब वह सब मुकद्दमेबाजी में पड़ गया है। मुझे दुःख हुआ था पर मैंने अपने मस्तिष्क को सँभाला। तुम कभी सुनते हो कि फसल बहुत अच्छी दिखलाई दे रही थी,

किसान सुख-स्वप्न देख रहा था पर फिर आंधी, ओले, पानी ने देखते २ उसकी फ़सल को बरबाद कर दिया। उसके सुख-स्वप्न बादलों की तरह छिन्न-भिन्न हो गये परन्तु अब किसान क्या करे? माथा पकड़ कर बैठ जाय अथवा नई फ़सल के लिए परिश्रम से जुट जाय, अपनी हानि से अपने मस्तिष्क को न खो बैठे।

यदि तुम महान् पुरुषों के जीवन में देखो तो तुम्हें मालूम होगा कि उनके जीवन में सफलता असफलता के झोंके आते रहते हैं। उनको अपमान और पराजय भी उठानी पड़ती है, उन्हें अनेक कष्टों में होकर गुज़रना पड़ता है परन्तु यह झोंके उनकी आत्मा को नहीं छू पाते। उनका लक्ष्य उनके सामने होता है और वे दृढ़ और निश्चित क़दमों से उसकी ओर बढ़ते हैं। समुद्र में तैरते हुए कुछ लहरें ऐसी आती हैं जो तैराक को धक्का देकर आगे बढ़ा ले जाती हैं, दूसरी कुछ लहरें ऐसी आती हैं जो पीछे धकेलती हैं। इन दोनों ही प्रकार की लहरों का आना अनिवार्य है। इसी तरह जीवन में भी सफलता, असफलता की लहरें आती रहती हैं। असफलता और सफलता एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। यही बात हम विजय-पराजय, दुःख-सुख, मान-अपमान के सम्बन्ध में कह सकते हैं।

आज जो विश्व में दो महान् विरोधी शक्तियों में युद्ध हो रहा है उसमें एक को कहीं सफलता मिलती है तो दूसरे को दूसरे मोर्चे पर सफलता मिलती है। दोनों शक्तियाँ सफलता असफलता के झूले पर झूल रही हैं। परन्तु सफलता का रहस्यमय गुरुमन्त्र क्या है?

सफलता असफलताओं में साम्यबुद्धि रखते हुए अन्तिम लक्ष्य की ओर बढ़ना, यही स्नायु-युद्ध है। असफलताओं की उत्तेजना में भी जो अपने स्नायुओं पर अधिकार रख सकेगा वही अपने अन्तिम लक्ष्य पर पहुँचने में सफल होगा। यही हम अपने जीवन-युद्ध के सम्बन्ध में कह सकते हैं।

एक और बात मनोयोग की है। जो चारों ओर अनेक उत्तेजनाओं के होने पर भी अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए शांत मस्तिष्क से कार्य करता है वही मनोयोगी है। एक बार नेपोलियन अपने एक प्राइवेट सेक्रेटरी को युद्ध के मैदान में एक पत्र लिखा रहा था कि एक तोप का गोला तम्बू को फाड़ता हुआ नेपोलियन के पास ही आकर गिरा। उसका प्राइवेट सेक्रेटरी काँपने लगा। नेपोलियन ने पूछा क्या है? उसने उत्तर दिया "बम्ब"। इस पर नैपोलियन ने कहा—"लेकिन बम्ब से और लिखने से क्या सम्बन्ध? तुम लिखते चलो।" और वह अपने कार्य में ऐसे ही लगा रहा जैसे मानो कुछ हुआ ही नहीं। महात्मा गाँधी जब रेल में यात्रा करते थे तो हर स्टेशन पर हज़ारों आदमी जय के नारे लगाते हुए गाड़ी को घेर लेते थे। कभी-कभी तो रात के बारह और एक बजे भी भीड़ की भीड़ उनके दर्शन के लिये नारे लगाती रहती थी। गाड़ी से गर्दन निकालते ही उनके ऊपर अपनी 'जय' की गोलियाँ दागने के लिए हज़ारों आदमी तत्पर रहते थे, परन्तु यह विचित्र मनुष्य इस विचित्र 'प्रेम' पर शांति लिये हुये प्रेम से अपना काम करता रहता था।

वह इन्हीं नारों के बीच में विश्व की बड़ी से बड़ी समस्याओं को सोचते रहते थे और 'हरिजन' के लिए लेख भी लिख लेते थे।

मनोयोग—यह मनोयोग कैसे प्राप्त हो सकता है? एक बार एक सज्जन ने मुझसे यहाँ जेल में कहा "यहाँ बैरक में इतना हल्ला-गुल्ला आपके चारों ओर होता रहता है फिर भी आप किस तरह लिखते रहते हैं।" मैंने कहा "ज़रा से मनोयोग के अभ्यास से"। वास्तव में मनुष्य को यह अभ्यास होना चाहिये कि उसे अपने लक्ष्य के अतिरिक्त अन्य वस्तुएँ गौण दिखलाई दें। महाभारत में द्रोणाचार्य ने एक दिन अपने शिष्यों की परीक्षा लेने का निश्चय किया और उन्होंने एक पेड़ पर मिट्टी की चिड़िया रख कर उसे लक्ष्य-भेद करने को कहा पर उन्होंने तीर छोड़ने से पहले हर शिष्य से पूछा "तुम्हें क्या दिखलाई देता है?" किसी ने कहा 'पेड़, जमीन, तालाब सब कुछ' किसी ने कहा बस 'पूँछ' और किसी ने कहा 'चिड़िया और वह डाल जिस पर चिड़िया रक्खी है' परन्तु अर्जुन ने कहा मुझे तो केवल चिड़िया की आँखें ही दिखलाई देती हैं। इसके बाद गुरु ने तीर छोड़ने को कहा। अर्जुन के अतिरिक्त सब शिष्य चिड़िया के भेदने में असफल रहे। अर्जुन ही सफल हुये क्योंकि केवल एकमात्र लक्ष्य उनके सामने था।

तुमने अपनी अंग्रेजी की पाठ्य-पुस्तकों में वह कविता तो पढ़ी होगी जिसमें उस धीर युवक का वर्णन है जिसे उसके पिता ने जहाज़ के एक कोने पर तैनात किया था, पर जहाज़ में आग लगने के

कारण वह जल गया परन्तु वहाँ से हटा नहीं। इसी मनोयोग की हमें आवश्यकता है। हम तनिक-सी असफलता तथा कष्ट के आते ही तुरन्त उस लक्ष्य से हट जाते हैं।

फिर इस विशेष कार्य-पद्धति का हमारे लिए व्यावहारिक संदेश क्या है ?

(१) हम जीवन का एक वृहद् लक्ष्य लेकर चलें और उसी लक्ष्य के लिए कार्य करें और उसको प्राप्त करने के लिए हम स्वार्थमय फल की आशा में आसक्ति न रक्खें।

(२) उस वृहद् लक्ष्य की ओर बढ़ते हुए यदि हमें सफलता, असफलता, जय, पराजय, दुःख, सुख, मान, अपमान जो भी प्राप्त हो, उसे साम्य बुद्धि से ग्रहण करें।

(३) कष्ट अथवा प्रलोभन हमें अपने मार्ग से विचलित न करें।

तुम्हारा पिता।

"सब आदमियों में असन्तुष्ट वही मनुष्य है जो यह नहीं बता सकता कि वह क्या करने जा रहा है; जिसके पास संसार में कोई विशिष्ट कार्य नहीं है और उसके निश्चय के लिए प्रयत्न भी नहीं करता। क्योंकि कर्म ही मानवता के समस्त दुःख और असन्तुलन को मिटा सकता है— सच्चा कर्म जिसे तुम्हें करना है"

—कारलायल

स्वास्थ्य और व्यायाम

(१२)

प्यारे बेटे,

क्या तुमने कभी यह भी सोचा है कि हमारे जीवन में स्वास्थ्य का क्या स्थान है ? मुझे खेद है कि स्वास्थ्य को हमें जितना महत्त्व देना चाहिए बहुत ही कम उसे उतना देते हैं। तुम्हीं सोचो यदि एक के पास अतुल सम्पत्ति हो, बढ़िया से बढ़िया भोजन खाने को मिल सकते हों, बढ़िया से बढ़िया कपड़े हों, बढ़िया से बढ़िया विलासिता के साधन हों अथवा महान् विद्वान् हो या उसका नाम समाचार-पत्रों में गूँजता हो, परन्तु यदि उसका स्वास्थ्य ठीक न हो, वह सदैव बीमार रहता हो, रोगों से युद्ध करते-करते उसका शरीर बिखर चुका हो। भला ऐसे मनुष्य के जीवन में सुख कहाँ है ? वह अपनी शक्तियों का कैसे उपयोग कर सकेगा ? एक बार एक धनी व्यक्ति ने एक हट्टे-कट्टे श्रमजीवी को रूखी रोटी को बड़े स्वाद से खाते हुए देखकर ठण्डी सांस ली और कहा "यदि मैं अपनी मिठाइयों को इसकी सूखी रोटियों से बदल पाता।"

एक बड़ी पुरानी कहावत है "स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन रहता है" और निरोगी काया को प्रथम सुख कहा है। रोगी व्यक्ति का मस्तिष्क कैसे ठीक कार्य कर सकता है ? परन्तु यदि शरीर निरोग है तो साधारण मनुष्य का भी मस्तिष्क अधिक विकसित हो सकता है। मैं जब तुमसे कहा करता हूँ कि पढ़ने से भी ज्यादा स्वास्थ्य की चिन्ता करो, उसका यही तात्पर्य है। मैं जब देखता हूँ कि तुम तन्दुरुस्ती की बाबत बड़े लापरवाह हो तो मुझे बड़ी चिन्ता होती है। मैं तुम्हें इस ओर से फिर एक बार सावधान कर देना चाहता हूँ। इस दुनिया में जिसका शरीर स्वस्थ हो, जिसे अपने कर्म करने के लिए आवश्यक शक्ति प्राप्त है और जिसने अपने कर्म को भली प्रकार करने के लिए व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त कर लिया है उसे सफलता प्राप्त करने का उस व्यक्ति से अधिक अवसर प्राप्त है जिसने अपने शरीर को बौद्धिक ज्ञान प्राप्त करने में घुला दिया है, जिसका शरीर उसका कार्य करने में उसका साथ नहीं देता और जिसमें व्यावहारिक ज्ञान की कमी है।

हमारे शास्त्रों में कहा है "शतायु भव" सौ वर्ष जीवित रहो। आजकल के प्राकृतिक वैज्ञानिकों का भी कहना है कि जीव की आयु उस काल से पचगुनी होती है जितना कि उसे पूर्ण विकसित होने में लगता है। मनुष्य का शरीर २१ वर्ष की अवस्था में पूर्ण विकसित हो जाता है, इस हिसाब से उसकी आयु १०५ वर्ष होनी चाहिए। परन्तु हालत क्या है ? भारतवर्ष की औसत

आयु २१ वर्ष है। योरुप में भी यह औसत आयु कुछ काल पूर्व ४२ वर्ष से अधिक नहीं थी, अब बढ़ रही है परन्तु फिर भी ५१ वर्ष से अधिक ऊपर नहीं गई। इसके विपरीत हम देखते हैं कि पशु इस नियम के अनुसार अपनी पूर्ण आयु प्राप्त करके ही मरते हैं। प्रायः उन्हें रोग भी बहुत कम होते हैं और उनसे मुक्ति भी अधिक शीघ्र प्राप्त कर लेते हैं। आज मानव-समाज जो अनेक रोगों का घर बना हुआ है, पशु उनमें से बहुत रोगों से मुक्त हैं।

आखिर पशुओं के मुकाबिले में भी हमारे इस अधःपतन का कारण क्या है? मानव-बुद्धि ने निदान और चिकित्सा के इतने आविष्कार किये हैं और दुनिया में चिकित्सकों, हकीम, डाक्टर, वैद्य, होम्योपेथ, एलोपेथ, आयुर्वेदिक, यूनानी आदि आदि की फ़ौजें सजी हुई खड़ी हैं फिर भी रोगरूपी महाशत्रु डबल मार्च करते हुए आगे बढ़ते चले जा रहे हैं।

एक बार एक महापुरुष ने कहा था यदि मुझे अधिकार मिले तो मैं दुनिया की इन सब औषधियों को बक्सों में भर-भर कर समुद्र की तलेटी में इतने नीचे डुबो दूँ कि फिर वे बाहिर न निकल सकें। हमारा यह अनुमान ग़लत है कि औषधियों से स्वास्थ्य प्राप्त होता है। मैं किसी भी अवस्था में औषधियों के सेवन का विरोधी नहीं हूं। सम्भव है वर्तमान हालतों में कभी-कभी औषधियों का प्रयोग भी आवश्यक हो सकता है परन्तु एक बात

निश्चित है कि हम औषधियों का बहुत अधिक प्रयोग करते हैं। एक डाक्टरी अस्पताल में जाइए, तनिक से ज़ुकाम के लिए मरीज़ के पेट में बोतलों की बोतलों दवाएँ झोंकी जा रही हैं। वैद्यजी महाराज जरा-जरा से रोगों पर नवयुवकों को क़ीमती-क़ीमती भस्म चटा रहे हैं। आज तो औषधियाँ स्वास्थ्य के स्थान में अनेक रोगों का कारण बन रही हैं। यदि औषधियों से ही जीवन और स्वास्थ्य प्राप्त होता तो हकीम लुक़मान, आचार्य धन्वन्तरि और दुनिया के बड़े-बड़े डाक्टर मरे न होते।

मैं कई बार सोचता हूं आखिर उस परम पिता परमेश्वर ने हमारे लिये इतने रोगों को क्यों भेजा ? आखिर पशु मनुष्य से क्यों अधिक स्वस्थ रहते हैं ? यही नहीं हिन्दुस्तान में तो हम यह देखते हैं कि शिक्षित और धनी व्यक्ति ही अधिक रोगी हैं। ऐसा क्यों है ? पशु हमसे क्यों अधिक स्वस्थ रहता है ? क्या तुमने यह कभी सोचा है। बात यह है कि उसका जीवन अधिक प्राकृतिक है, वह अधिक सादा भोजन करता है और हमसे अधिक परिश्रम करता है। इसके विपरीत हम सोचे बैठे हैं जितना ही हम बढ़िया और तरह-तरह का भोजन करेंगे उतने ही स्वस्थ हम होंगे। हम तो सोचते हैं भरपेट भोजन पर कुछ बढ़िया मिठाई और मिल जाय तो खालें। अगर उससे अजीर्ण होगा तो चूरन फाँक लेंगे।

हम यदि निरोग और लम्बी आयुवाला होना चाहते हैं तो

हमें दो बातों की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। एक व्यायाम और दूसरा भोजन। मैं जब सायङ्काल को तुम्हें खेल के मैदान में होने की जगह किसी कोने में कोई कहानी की पुस्तक पढ़ते हुए देखता हूं तो मुझे प्रतीत होता है मानो तुम आत्मघात कर रहे हो। समय पर घूमना, व्यायाम करना, खेलना, शरीर को स्वस्थ रखने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। मनुष्य के लिए तो यह जीवन है। तुम बालक को देखते हो। प्रकृति स्वभाव से ही उसमें हरकत करने और खेलने की प्रवृत्ति पैदा कर देती है, उसके विकास के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है। यदि किसी बालक में यह प्रवृत्ति न हो तो तुरन्त अनुमान किया जाता है कि उसमें कोई रोग है। इसी तरह पशुओं में भी शारीरिक श्रम की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है।

मानव समाज के स्वास्थ्य के लिये भी यह अत्यन्त आवश्यक है कि वह अधिक से अधिक समय खुले मैदान में साफ़ हवा में व्यतीत करे। तीव्र गति से साफ़ हवा और स्वस्थ वातावरण में कम से कम तीन चार मील का घूमना एक अच्छा व्यायाम है। घूमने के लिये सबसे उपयुक्त समय सूर्योदय से एक घण्टा पूर्व है। सूर्योदय तक तुम अपना घूमना समाप्त कर घर वापिस आ सकते हो।

घूमने के नियम—

(१) प्रतिदिन नियमित समय पर टहलने जाओ।

(२) साफ़ और स्वच्छ वातावरण पार्क, जंगल, पहाड़ पर घूमने जाओ।

(३) घूमने का फासला धीरे २ बढ़ाना चाहिए। साधारण तन्दु-रुस्ती वाले को ४–५ मील हर रोज़ टहलना चाहिए।

(४) घूमने के समय हलके और आरामदह कपड़े पहिनो, घास और पथरीली जगह में नंगे पैर घूमने से भी अच्छा होता है।

(५) काफ़ी तेजी से घूमना चाहिये, जिससे शरीर में हरकत हो।

(६) घूमने के समय बदन सीधा और कुछ आगे को झुका रहे।

(७) नाक से गहरी सांस लेनी चाहिए।

(८) टहलते समय प्रसन्न रहिये और चिन्ताओं को दूर रखिये।

(९) अपने मन के एक साथी के साथ भी घूमने जा सकते हो।

(१०) घूमने में अगर पसीने आ जायँ तो बन्द कमरे में अँगोछे से पोंछ डालो।

इसके अतिरिक्त दण्ड और बैठक अथवा यौगिक आसन में से दस पन्द्रह मिनट कुछ और व्यायाम करना चाहिए। यह यौगिक आसन स्वास्थ्य के लिए बड़े अच्छे हैं। आजकल अङ्गरेजी और अमरीकन-पत्रों में भी इनकी खूब धूम है। तुमने 'लिटरेरी डाइजेस्ट' पत्र में इसके चित्र देखे होंगे। पर यह आसन किसी योग्य व्यक्ति से सीखने के बाद ही करने चाहिए और इनका समय क्रमशः बढ़ाना चाहिए। 'सूर्य-नमस्कार' एक सुन्दर और वैज्ञानिक व्यायाम है। यह कई आसनों का सम्मिश्रण है।

दौड़ भी एक अच्छा व्यायाम है। यहाँ जेल में कई प्रतिष्ठित व्यक्ति

चक्कर में एक दो मील दौड़ लेते हैं, इससे उनका स्वास्थ्य अच्छा है। इसके अलावा आधुनिक खेलों में हॉकी, वालीबॉल, फुटबॉल, बेड मिण्टन, टेनिस, गोल्फ और पोलो आदि भी अच्छे खेल हैं। हमारे देहात में भी कुछ अच्छे खेल थे जो बहुत सस्ते थे। युवकों को सायङ्काल कोई खेल खेलना आवश्यक है। व्यायाम के सम्बन्ध में निम्न बातें ध्यान में रखनी चाहिए :—

(१) भोजन के बाद ही कसरत मत करो। कम से कम तीन घण्टे का अन्तर अवश्य होना चाहिए।

(२) सुबह या शाम कोई भी समय कसरत के लिए अच्छा है। सुबह यदि व्यायाम करो तो शाम को घूमो और अगर शाम को खेलो तो सुबह थोड़ा घूमो और व्यायाम करो।

(३) व्यायाम इतना ही करो जिसमे अधिक थकावट न हो। उचित व्यायाम के बाद सुस्ती के बजाय हल्कापन और फुर्ती आती है।

(४) कसरत के तुरन्त बाद ही पानी नहीं पीना या खाना नहीं खाना चाहिए।

(५) कसरत जहाँ तक हो सके खुली जगह और साफ़ हवा में करो।

(६) अगर कसरत करने के बाद पसीना निकल रहा हो, तो बन्द कमरे में पसीने को पोंछ कर गरम कपड़े पहिन सकते हो। अगर शरीर में ताकत हो तो उसी समय नहा कर कपड़े भी पहिन सकते हो।

(७) कसरत क्रमशः बढ़ानी चाहिए।

(८) अगर शरीर कमज़ोर हो और दूसरे व्यायामों से जल्दी थकावटमालूम होने लगती हो तो ऐसी हालत में घूमना ही अच्छा है।

(९) शीर्षासन वगैरः कठिन आसन बिना किसी योग्य आदम की देख-रेखके नहीं करने चाहिए, और यदि इनसे तनिक भी हानि होती दिखाई दे तो समझना चाहिए कि यह आसन करने में कोई ग़लती है और उसे तुरन्त बन्द कर देना चाहिये।

(१०) ऐसी कसरत नहीं करनी चाहिए जिसमें मस्तिष्क को चोट या धक्का लगे।

(११) हफ्ते में कम से कम दो बार तेल की मालिश करनी चाहिए।

(१२) साबुन की जगह कोई उबटन का व्यवहार करना अच्छा है।

मुझे उम्मीद है कि तुम स्वास्थ्य और दीर्घायु के लिए व्यायाम उतना ही आवश्यक समझोगे जितना भोजन।

तुम्हारा पिता।

भोजन

(१३)

प्यारे बेटे,

इससे पूर्व पत्र में मैंने तुम्हें व्यायाम और स्वास्थ्य के सम्बन्ध में कुछ लिखा था। हम स्वस्थ मनुष्य किसे कह सकते हैं? जिसे कोई रोग नहीं है, जो अपना कार्य ठीक प्रकार कर सकता है, जिसे अच्छी तरह भूख लगती है और जो भोजन को पचा कर उसे अच्छी तरह खून में परिणित कर लेता है, जिसमें शक्ति और स्फूर्ति है, जिसका मस्तिष्क और मन स्वस्थ है, उसे हम पूर्ण स्वस्थ मनुष्य कह सकते हैं, फिर चाहे वह गामा की तरह डील-डौल वाला न हो और जिबेस्को की तरह उसकी मांस पेशियाँ बहुत स्थूल न हों।

मैं तुम्हें बता चुका हूं कि अच्छे स्वास्थ्य रूपी भवन के लिए व्यायाम और भोजन दो आवश्यक स्तम्भ हैं। हमारे नीतिकारों ने भोजन के महत्त्व को स्वीकार किया है। गीता में भगवान् कृष्ण ने भोजन को तीन प्रकार का बताया है, सात्विक, तामस और राजस।

आयुः सत्त्व बलारोग्यः सुखप्रीति विवर्धनाः
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहारा सात्विकप्रियाः।

आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य, सुख और प्रीति को बढ़ानेवाले ऐसे रस युक्त, चिकने और स्थिर रहने वाले तथा स्वभाव से ही मन को प्रिय, ऐसे आहार तो सात्विक पुरुष को प्रिय होते हैं।

कट्वम्ल लवणात्युष्ण तीक्ष्ण रूच विदाहिनः,
आहारा राजसस्येष्टा दुःख शोकभयप्रदाः

और कड़ुवे, खट्टे, लवण युक्त और अति गरम तथा तीक्ष्ण, रूखे और दाहकारक एवं दुःख, चिन्ता और रोगों को उत्पन्न करने वाले आहार अर्थात् भोजन करने के पदार्थ राजस पुरुष को प्रिय होते हैं।

यात यामं गत रसं पूति पर्युंसितं च यत,
उच्छिष्ट भपिचामेध्यं भोजनं तामस प्रियम्।

तथा जो भोजन अधपका, रस-रहित और दुर्गन्ध-युक्त एवं बासी और उच्छिष्ट है तथा जो अपवित्र भी है, वह भोजन तामस पुरुष को प्रिय होता है।

आदर्श भोजन क्या है ?

(१) *जो शीघ्र पच जाय।*

(२) जो पाचन करनेवाले अवयवों जैसे आँतें, जिगर, दिल, फेंफड़े आदि पर अधिक वजन न डाले।

(३) जो रोग और कीटाणुओं से रहित हो।

(४) जो शरीर को आवश्यक शक्ति और गर्मी प्रदान करे और भिन्न अङ्गों की पुष्टि करे।

(५) जो शरीर के लिए अनावश्यक पदार्थों को सुविधा पूर्वक बाहर निकालने में मदद करे।

भोजन के लिए मोटे-मोटे नियम यह हैं :—

(१) समय पर नियमित भोजन किया जाय।

(२) यदि भूख न हो तो न खाया जाय। यदि इस नियम का पालन किया जायगा तो स्वय ही समय पर भूख अवश्य लगने लगेगी।

(३) जब तक पूर्व भोजन अच्छी तरह न पच जाय दूसरी कोई चीज़ न खाई जाय। भोजन करने के ४-५ घण्टे पूर्व कोई चीज़ न खाई जाय।

(४) रसवाली चीजें, दूध, फलों का रस और ठोस चीजें-जैसे दाल, भाजी आदि एक साथ न खाई जायँ। जल भी भोजन के दो घण्टे बाद पिया जाय।

(५) भोजन में मावा, मैदा, बेसन, आदि की मिठाइयाँ और पकवान न हों। यदि मीठी चीज़ें खानी हैं तो शहद, गुड़, मुनक्का, पिण्ड, खजूर, पेठे की मिठाई, मुरब्बे और कभी २ फटे दूध के बने रसगुल्ले आदि थोड़ी मिकदार में खाए जा सकते हैं।

(६) भोजन में फल के रस, साग-सब्जी, तरकारियों का सूप, फलों का रस, दही और मठा उचित और योजना के साथ होना चाहिये। रोटी हाथ की चक्की से पिसे हुए आटे की चोकर सहित होनी चाहिए।

(७) खाई हुई चीज़ को गले से नीचे उतारने से पहले उसे खूब चबा लेना चाहिए।

(८) भोजन में वह अंश अधिक हो जिससे क्षार (alkaline) पैदा हो और वह अंश कम होना चाहिए जिसमें खटाई (acidity) हो।

(९) सोने के ३-४ घण्टे पूर्व तक कोई दूसरा भोजन, दूध, पान आदि नहीं लेने चाहिए।

(१०) भोजन करने के दस-बारह मिनट तक विश्राम करना चाहिए पर भोजन करके सो जाना ठीक नहीं है।

तुमने हिन्दू-गृहों में देखा होगा माता, स्त्री या पुत्र-वधू चौका-चूल्हा लिए बैठी हैं, पुत्रजी, पतिजी, श्वसुरजी समय पर नहीं आए, बहुत से तो व्यर्थ की बातों में ही फँस जाते हैं। रसोई लिए बैठी हैं, शाम के तीन बज गए हैं ? हिन्दू नारी, बिना पुरुषों को भोजन कराए स्वयम् भोजन नहीं करतीं। ज़रा उसके धैर्य को तो देखो कि हमारी अव्यवस्था से उसे कितनी मानसिक यन्त्रणा होती है, उसका अनुभव करो। इस तरह हमारे भोजन का कोई समय नहीं है। पर एक अंग्रेज ठीक समय पर अपना काम छोड़ देता है, एक मिनट भी इधर से उधर नहीं हो सकता, फिर वह काम चाहे कितना ही ज़रूरी क्यों न हो ? वह ठीक समय पर अपना भोजन करता है। हम क्यों नहीं ऐसा कर सकते हैं ? मैं यह मानने को तय्यार नहीं हूं कि हम यदि चाहें तो ऐसा नहीं कर सकते। यदि हमारे सामाजिक तौर-

तरीके इसमें बाधक हैं तो हमें उन्हें सुधारना चाहिए । मैं स्वयं भी इसका शिकार रहा हूं और इससे हानि उठाई है।

तुम अपने यहाँ की दावतों में तो शामिल होते हो, परन्तु क्या तुमने कभी यह भी सोचा है कि उनसे राष्ट्र के स्वास्थ्य और साधनों का कितना ह्रास होता है ? यहाँ जो मैदा, मावे और बेसन के अनेक मीठे, तीखे, चरपरे भोजन होते हैं उनसे पेट देवता 'त्राहिमाम् त्राहिमाम्' कर उठते हैं। बारात और दावतों से अनेक लोग बीमार होकर लौटते हैं। शहर में हर चार में तीन व्यक्ति किसी न किसी पेट रोग से—कब्ज, अपच, पेचिस, मन्दाग्नि आदि रोगों से पीड़ित रहते हैं उनमें से कितना श्रेय इन दावतों को प्राप्त है ? और फिर भला जिस देश में करोड़ों आदमी प्रतिदिन भूखे सोते हैं उस देश में इतनी भोज्य सामग्रियों का अपव्यय और झूठन सामाजिक अनाचार नहीं तो क्या है ?

हम अपने मित्रों को, जब वे हमारे घर आते हैं तो हम उन्हें बढ़िया बढ़िया गरिष्ठ चीजें खाने को विवश करते हैं फिर चाहे उनका भोजन का समय हो या न हो और उन्हें भूख हो या न हो। शिष्टाचार और स्नेह अच्छी बात है परन्तु यह कैसा शिष्टाचार और स्नेह जो उन्हें रोगी बना दे ? भोजन करने में हमारे यहाँ 'तक़ल्लुफ़' बहुत होता है । श्रीमान् मधुरप्रियजी के यहाँ श्री सङ्कोचप्रियजी आए हैं, श्री मधुरप्रियजी उन्हें नाश्ता कराते समय 'दो रसगुल्ले' और कहकर अपनी तरफ से बढ़ाते हैं, श्री सङ्कोचप्रियजी मन में लेना

चाहते हैं पर ऊपर से 'न-न' कर रहे हैं, दसियों मिनट इस रस्साकशी में ही निकल जाते हैं और कभी सङ्कोचप्रियजी को आवश्यकता से अधिक खाना पड़ता है तो कभी वे भूखे ही रह जाते हैं। मेरे एक मित्र हैं, उनका मुझे व्यवहार बड़ा पसन्द है, मैं उनके यहाँ जब कभी ठहरता हूं तो उनका नौकर मेरे पास बैठा रहता है दिन भर का भोजन का प्रोग्राम पूछ-पूछ कर बना लेता है। इसके बाद न कोई आग्रह न कोई तकल्लुफ। एक बार एक सज्जन उनके यहाँ रात को बाहर से आये, भूखे थे, उनसे भोजन के लिए पूछा गया "भोजन तो करेंगे न ?" उन्होंने कहा "धन्यवाद ! मुझे इस समय भूख नहीं है।" इसके बाद वह इन्तज़ार करते रहे कि उनसे फिर आग्रह किया जायगा पर यह तो वे सीखे ही नहीं थे। चुप हो गए, सब सो गए पर अतिथि महाशय को चैन कहाँ ? रात्रि के तीन बजे ही उठ कर ज़ोर से ईश्वर-भजन करने लगे। मित्र उनके भजन का तात्पर्य समझ गये, उन्होंने नौकर को भेजा। नौकर से वे खुल पड़े, कहा "भूख लगी है, कुछ खाने को लाओ।" उन्हें उसी समय भोजन मँगाया गया।

एक और बात ! श्रीमान् ऐश्वर्य-प्रदर्शकजी के यहाँ उनके मित्र आये हैं। वे ऊपरी टीम-टाम और अपना ऐश्वर्य उन्हें दिखाने में व्यस्त हैं, प्रति दिन साधारण भोजन बनता है पर आज तश्तरियों पर तश्तरियाँ बन रही हैं। तुमने 'दावते शीराज़' की कहानी तो सुनी होगी। 'ख़ातिर-तवज्जह' से घरवाले और अतिथि दोनों परेशान हैं। इसमें स्वाभाविकता नहीं है।

अब जरा 'अङ्गरेजी बाबुओं की बात भी सुनलो। अधकचरी नक़ल कितनी ख़राब होती है यह तुम इससे जान सकते हो। चारपाई से उठते ही 'हिन्दुस्तानी साहब' को चाय और डबलरोटी चाहिए पर 'हिन्दुस्तानी साहब' के 'ब्रेक फ़ास्ट' और 'अङ्गरेजी साहब' के 'ब्रेक फ़ास्ट' में फ़र्क होता है। अङ्गरेजी साहब हलकी चाय और एक दो टुकड़े 'टोस्ट' खाता है तो हिन्दुस्तानी साहब चाय के नाम पर काढ़ा और टोस्ट के साथ लड्डू, बर्फ़ी और मठरी भी उड़ाता है। हिन्दुस्तानी साहब का 'ब्रेक फ़ास्ट' काफ़ी भारी होता है। परिणाम हिन्दुस्तानी साहब के चेहरे पर हमेशा तीन बजते रहते हैं। 'हिन्दुस्तानी साहब' सोडा-वाटर, बर्फ, रंग और एसेन्स के शर्बत और टीन में पेक किये हुये बे-मौसम के फलों तथा सिगरेटों को अधिक प्रयोग करने लगा है। इसलिए नहीं क्योंकि यह चीज़ें उसके स्वास्थ्य के लिए आवश्यक हैं अपितु इसलिये क्योंकि यह 'फ़ैशन' और 'सोसायटी' की चीज़ें हैं।

तुमने एक सुन्दर बक्स, में बन्द 'फ़ोर्स' नाम की वस्तु तो दूध के साथ नाश्ते में अवश्य खाई होगी। यह चपटे किये हुए गेहूं होते हैं परन्तु इनका गुण हमारे यहाँ के दलिये से कम होता है। ताज़ी तैयार किया हुआ दलिया इस 'फोर्स' से कहीं अधिक लाभकर होता है। हां! 'फोर्स' सुन्दर पेकिट में ज़रूर बन्द होता है और क़ीमती होता है। मैं भोजन के सम्बन्ध में अङ्गरेजों की नक़ल करने का पक्षपाती नहीं हूं। हां! यह मानता हूं कि भोजन के सम्बन्ध में

हमारे यहाँ बड़ा अज्ञान है और इसके सम्बन्ध में हमें बहुत वैज्ञानिक अन्वेषणों की आवश्यकता है। परन्तु हमें अपना भोजन अपनी परिस्थितियों, आबहवा और संस्कृति के अनुसार ही बनाना होगा।

अमरीका आदि दूसरे देशों में भोजन के सम्बन्ध में बड़े क्रांतिकारी विचार पैदा हो रहे हैं। वहां जो भोजन-सुधार आंदोलन चला है उसमें ताजे फल, दूध, भाजी आदि चीजों को ही अधिक स्थान दिया जा रहा है।

ज़रा उनका प्रोग्राम तो देखो:—

लगभग ८ बजे सुबह—ताजे फल और दूध।

लगभग १२॥ बजे दिन—कच्ची सब्जियों का सलाद काफ़ी मात्रा में, चोकर और आटे की डबलरोटी और मक्खन।

लगभग ७ बजे शाम—पकी भाजी, गोश्त, मछली और अण्डे। ऐसे भी लोग हैं जो मांसाहार से परहेज़ करते हैं और उनकी जगह बादाम, फल, सूखी मेवा, मक्खन आदि खाते हैं।

भोजन की योजना—मैं एक पुस्तक से निम्न योजना कुछ संशोधन करके देता हूं—

सुबह—यदि भूख मालूम होती हो तो कोई हलकी सी चीज़ जैसे एक गिलास भुना जीरा, नमक और काली मिर्च पड़ा हुआ मठा लो। अथवा रात को एक डेढ़ पाव पानी में एक डेढ़ छटांक किसमिस एक कांच के बर्तन में भिगो दो और उसमें आधे नीबू का

रस निचोड़ दो। सुबह इस पानी को एक चम्मच से चलाकर पी सकते हो, चाहे ज़रा सी चीनी मिला लो।

यदि भोजन ११ या १० बजे करते हो तो सुबह दूध, दलिया और गुड़ मिलाकर खा सकते हो। तनिक-सा गुलाबजल मिला दो। चीनी हानिकर होती है उसका व्यवहार यथा-सम्भव कम करना चाहिए।

लगभग ६ बजे सुबह—(१) टमाटर, गाजर, खीरा, ककड़ी, पतली मूली, मूली का पत्ता, करमकल्ले की पत्ती, धनियाँ की पत्ती, लौकी, सलाद की पत्ती, चने का साग। इनमें से तीन या चार का जिनमें से एक पत्तीदार पदार्थ हो, कच्चा साग जिसे अङ्गरेजी में सलाद कहते हैं।

(२) रोटी या चावल और एक पकी भाजी जिसमें मिर्च मसाले ज्यादा न हों। दाल यदि खानी हो तो साबत होनी चाहिये। पर यदि कोई रोग हो तो दाल नहीं खाना चाहिये।

(३) मुँह मीठा करने के लिए पिण्ड खजूर, मुनक्का, शहद।

अथवा दही गुड़

लगभग १२ बजे—१२ बजे दोपहर, पानी सादा या नींबू के रस के साथ—खाने के साथ पानी पीना ठीक नहीं है।

लगभग ३-३० बजे—एक या दो प्रकार के ताजे फल या उनका रस

या तरकारी का सूप अथवा एक उफान का उबला दूध और शहद या गुड़; अथवा बादाम की ठण्डाई।

लगभग ७ बजे सायङ्काल—रोटी एक या दो प्रकार की हरी भाजी, मक्खन और एक फल।

लगभग ६॥ बजे या दूसरे दिन बड़े सवेरे या सो जाने पर रात में जब नींद खुले—पानी।

सोते समय दूध नहीं पीना चाहिए क्योंकि उस समय तक भोजन पच नहीं पाता और सोने पर पेट को विश्राम नहीं मिलता।

दूसरे हफ्ते में दो-एक बार कुछ थोड़ा परिवर्तन कर सकते हैं। इलकी और घर की बनी मिठाई के एक दो टुकड़े खा सकते हैं। यदि किसी दिन अधिक मिठाई खानी पड़े तो दूसरे दिन उपवास करना चाहिए।

मैंने जेल में सुबह दलिया खाना प्रारम्भ किया है और उससे लाभ मालूम हुआ है।

तुम्हारा पिता।

हमारी भेष-भूषा

(१४)

प्यारे बेटे,

मैं आज जब तुम्हें लिखने बैठा हूं तो प्राची में सूर्य हँसता हुआ अन्तःपुर से निकल रहा है, उसकी रश्मियां सामने घेरे में खड़े हुए इमली के पेड़ों के नन्हे २ पत्तों से मेरे पास पहुँचने के लिए झगड़ रही हैं। उसमें से छनता हुआ प्रकाश मेरी दीवार की बेरकों पर हलका-हलका छा रहा है। एक भावुक क़ैदी के हृदय में उठते हुए तूफ़ान का क्या तुम अनुभव कर सकते हो? और विशेषकर तब जब कि उसकी क़ैद की मियाद लम्बी हो पर फिर मैं तो ला-मियाद क़ैदी ठहरा। यही भोंडी और फूटी दीवारें अपने चारों ओर चौबीसों घण्टे देखकर थक जाता हूं। यह काठ के बने हुए जेल-विभाग और उनके शुष्क अधिकारियों में कला के लिए स्थान कहां! अब जब तुम देखोगे कि मेरे सिर में इतने बाल सफ़ेद हो गए हैं तो तुम आश्चर्य करोगे! यहां बहुत से ऐसे लोग हैं जिनके बहुत से बाल सफ़ेद होते जा रहे हैं।

यह तो यहाँ के वातावरण के मनो-वैज्ञानिक दबाव का असर है परन्तु तुम यह न समझना कि मेरे जीवन में यहाँ कोई रस नहीं है। यहां के कलाविहीन और भौंड़े वातावरण में भी मेरी ख्यालाती दुनिया मेरे लिए एक अजीब मनोरंजन की सामग्री है। दुनिया के संघर्ष से दूर एक कौने में बैठ कर झगड़ती दुनिया को देखने और उसके प्रभाव से मुक्त एक नए प्रवाह में बहने का आनन्द मुझे विह्वल कर देता है।

हाँ ! तो आज मुझे भेष-भूषा के सम्बन्ध में कुछ कहना है। तुमने रेल में तो बीसियों पचासियों बार सफ़र किया है। वहाँ सैकड़ों भिन्न-भिन्न स्थानों—प्रान्तों, नगरों—भिन्न २ विचारों, भिन्न-भिन्न शिक्षा और साधनों के व्यक्ति तुम्हें दिखलाई देते हैं। यदि तुम उनके चाल-ढाल, भेष-भूषा, रङ्ग-ढङ्ग को ध्यान से देखो तो एक बात अवश्य दिखलाई पड़ेगी कि सब कुछ गड़बड़ अव्यवस्था है। कहीं उनके जीवन में साम्य नहीं है। क्या हमारे राष्ट्र की कोई एक भेष-भूषा पोशाक नहीं हो सकती ? क्या उनके रहन-सहन में कोई एक विचारधारा नहीं हो सकती।

यह देखिए यह 'हिन्दुस्तानी साहब' अकड़े चले जा रहे हैं। रङ्ग काला है पर है पूरा साहबी ठाठ, एड़ी से सिर तक योरोपियन भेष-भूषा में कसे हुए हैं पर क्या उनके लिए यह स्वाभाविक है ? उनका शरीर इस शिकञ्जे से छुटकारा पाने के लिए व्याकुल है, कब घर पहुँचे और इस कैद से छुट्टी मिले। पर मान-

सिक गुलामी के अलामात सिर पर सवार होकर घूमते हैं और यह मारवाड़ी सेठजी। पूरी मनोरञ्जन की सामग्री, इनके शरीर की हर चीज़ निकल भागने की कोशिश कर रही है, इनके शरीर पर हर कपड़ा फूल की तरह पड़ा हुआ है और खाल की तरह चढ़ा हुआ है। यह 'हिन्दुस्तानी मिस साहब' इनके 'शॉर्ट स्कर्टस' से बाहर निकली हुई काली-काली टाँगें आड़ी तिरछी पड़ रही हैं और यह ठाकुर साहब की धर्मपत्नी जी, इनके चालीस गज के घेर का लहँगा इसी तरह घूमता है जैसे किसी सरकस का 'जाय ह्वील'

यह तो हुई हँसी की बात पर वास्तव में बात यह है कि हमारे राष्ट्र को एक वैज्ञानिक और हमारे देश और परिस्थितियों के अनुकूल एक भेष-भूषा की अत्यन्त आवश्यकता है।

मैं तुम्हें यह बताना चाहता हूं कि केवल अधिक पैसे ख़र्च करने से ही सुन्दर और सुविधाजनक वस्त्र प्राप्त नहीं होते। अनेक लोगों को तुमने बहुत क़ीमती कपड़े बड़े भद्दी तरह पहिनते हुए देखा होगा। यदि उनमें तनिक सुरुचि और समझ होती तो वे उससे आधा ख़र्च करके भी अधिक अच्छे और साफ़ दिखलाई पड़ सकते थे। कभी-कभी बहुत सस्ते कपड़े भी यदि ठीक तरह सिले हों, साफ़ हों और ढङ्ग से पहिने हों तो वे कीमती कपड़ों से ज्यादा भले मालूम होते हैं।

वस्त्रों के उपयोग में भी तुम्हें अपनी कला और सुरुचि का परिचय देने का एक बड़ा अवसर प्राप्त होता है। तुम पण्डित

जवाहरलाल नेहरू से तो मिल चुके हो ? क्या वह बहुत कीमती कपड़े पहिनते हैं ? क्या वह उनमें अच्छे नहीं दिखलाई पड़ते ? अच्छे ढङ्ग से पहिना हुआ और अच्छा सिला हुआ एक खद्दर का कुरता, गांधी टोपी, धोती और चप्पल और अधिक से अधिक 'जवाहर जाकट' ग्रीष्म ऋतु के लिये क्या अच्छी पोशाक नहीं है ? मेरे एक मित्र बम्बई नेशनल कालेज के प्रिन्सिपल थे, योरप खूब घूमे थे, उनके पास केवल एक चमड़े का बक्स और बिस्तर रहता था। बक्स में एक दो कुरते, एक दो टोपी, एक दो बनियान, और एक दो धोती बस, यही सब कपड़े रहते थे! और कुछ अच्छा कपड़ा-धोने का साबुन। बस, जब सुबह शाम नहाने जाते तो धोती, बनियान, कुरता और टोपी पर एक हाथ साबुन का लगा कर निचोड़ कर सुखा देते थे। इसमें उन्हें तीन चार मिनट लगते थे पर न धोबी की ज़रूरत, न बहुत सामान ले जाने की ज़रूरत और फिर भी साफ़ भकाभक।

रात को सोने अथवा खेत या फेक्टरी में काम करने के लिए नाड़ेदार घुटन्ना और आधी बाँहों की कमीज़ अथवा बनियान काफी सहूलियत के हैं। यहाँ मुझे गर्मी में यह घुटन्ना और बनियान बहुत सुभीते के मालूम होते हैं और रोज़ साबुन से धोने में सहूलियत भी मालूम होती है। लड़कों के लिए यह घुटन्ने और आधी बाँहों की कमीज़ अच्छी और सुविधाजनक पोशाक है। छोटी-छोटी लड़कियों के लिए जम्फर अच्छी चीज़ है परन्तु बड़ी लड़कियों

और स्त्रियों के लिए योरोपियन पोशाक बिलकुल ठीक नहीं है, वह बड़ी भद्दी और अशिष्ट मालूम होती है। इसके विपरीत भारतीय साड़ी बड़ी सुविधाजनक और शानशौकत से भरपूर होती है। उसमें तरह-तरह के बेलबूटे और पक्के किनारे लगा कर उसे बहुत सुन्दर बनाया जा सकता है। उसमें कला और सुरुचि के लिए बहुत स्थान है। अनेक योरोपीय वस्त्र विशेषज्ञों ने भारतीय साड़ी की बड़ी प्रशंसा की है 'हालीवुड' की अनेक चित्र-पट अभिनेत्रियाँ भारतीय साड़ी को देखकर मुग्ध हो गई हैं। लहँगा ओढ़नी, अथवा योरोपियन पोशाक के स्थान में स्त्रियों के लिए साड़ी और ब्लाउज़ ही अधिक सुविधाजनक सस्ती और सुन्दर पोशाक है और वही हमारी राष्ट्रीय पोशाक होनी चाहिए।

पुरुषों के लिए पैन्ट-कोट मुझे किसी तरह नहीं जँचते। विशेष अवसरों और मिलने-जुलने के लिये अच्छी सिली शेरवानी, चूड़ीदार या कम ढीला पाजामा और गाँधी टोपी अच्छी, कम ख़र्चवाली और प्रभावपूर्ण पोशाक है। केन्द्रीय ऐसेम्बली के एक आंध्र प्रान्त के सदस्य जो अब एक डिपुटी कमिश्नर हैं अवस्था करीब ४० वर्ष, सुगठित शरीर और ऊँचा क़द या जो बेडौल न था ऐसे शरीर पर तहमद, कोट और साफ़ा पहन कर ऐसेम्बली में जाते थे, मुझे कुछ यह पोशाक जँचती न थी। मैंने आग्रह करके उनके लिए एक शेरवानी, गाँधी टोपी और चुस्त पायजामा सिलवाया और उनको उन्हें पहिना कर भेजा। वह अब कुछ के कुछ दीखने लगे थे। सब

लोगों ने इनके वस्त्र परिवर्त्तन का स्वागत किया। फिर तो और कई सदस्यों ने भी शेरवानी, गाँधी टोपी और चुस्त पायजामा सिलवाये। मुझे मालूम है कई दर्जन आदमियों ने मुझे देखकर अपनी पहली पोशाक छोड़कर शेरवानी और पायजामा अपनाया है। एक ईसाई सज्जन जो एक बीमा कम्पनी के सेक्रेटरी हैं, बड़े ठाटबाट से शेरवानी पायजामा पहिनकर निकलते हैं। वे पहिले के कोट, पेन्ट से अधिक अच्छे मालूम होते हैं। एक कहावत है कि 'बनिया का छैला कुछ उजला कुछ मैला' यह बनिये के छैलों के लिए ही नहीं, हम दूसरे हिन्दुस्तानी लोगों के लिये भी कह सकते हैं। बहुत बढ़िया कपड़े पहिनने पर भी बहुत से लोगों में कुछ साफ़ और कुछ मैली चीज़ें दिखलाई देती हैं। साफ़ पालिश किये हुए जूते पहिनने का बहुत कम लोग ध्यान रखते हैं। वस्त्रों के सम्बन्ध में 'सादा पर साफ़ और सुरुचिपूर्ण' यह हमारा नारा होना चाहिये। हम कम से कम कपड़े और वस्तुएँ व्यवहार में लावें पर वे साफ़, सुरुचिपूर्ण और ढंग से व्यवहार की गई हों।

पोशाक पहिनने में कुछ अधिक समय, धन और शक्ति के व्यय करने की आवश्यकता नहीं है। थोड़े से सावधान रहने की ज़रूर ज़रूरत है। जैसे यदि कोई कपड़ा कहीं से 'दांत' दिखा जाय तो उसे तुरन्त दुरुस्त करा लेना चाहिये। बटन एकसे और पूरे रहने चाहिये। कपड़ों के रंग के चुनाव, बटन आदि के चुनाव का पोशाक पर बड़ा असर पड़ता है। बटन के टूट जाने पर तुरन्त वैसा ही

दूसरा बटन लगा लेना चाहिये। सिलवटदार कपड़े भद्दे मालूम होते हैं, इसलिए कपड़ों पर सिलवटें दूर करने के लिये एक 'इस्तरी' रखना चाहिये।

भारतवर्ष एक गरम देश है, यहाँ बहुत तंग और कसे हुए कपड़े पहनना सुविधाजनक और स्वास्थ्य के लिए अच्छा नहीं है परन्तु बहुत झावर-झल्ला कपड़े न तो अच्छे लगते हैं और न सुविधाजनक ही होते हैं। कपड़े ऐसे होने चाहिये जो बदन पर 'फिट' भी हो जायँ और उनमें से हर अङ्ग को हवा भी ख़ूब अच्छी तरह लगे।

कपड़े जहाँ-तहाँ फेंक देना बहुत बुरी आदत है। जिन्हें अपने कपड़े अच्छी तरह रखने की आदत नहीं है वह अधिक ख़र्च करने पर भी साफ़ नहीं रह सकते। प्रति दिन के कपड़े भी ऐसे स्थान पर रखने चाहिये जहाँ गर्द, मिट्टी, पानी न जा सके। कमरे में भी यदि कपड़े इधर-उधर फैले रहना या अधिक खूँटियों पर टंगे रहना अच्छा नहीं मालूम होता। उसके लिये लकड़ी की अथवा दीवार में बनी हुई कपड़े रखने की अलमारियाँ बड़ी सुविधाजनक होती हैं।

तुम्हारा पिता।

जिनमें तनिक-सी असावधानी—लापरवाही करने से उसका जीवन ही नष्ट हो जाता है। अच्छी-अच्छी नीति सम्बन्धी पुस्तकें और गुरुजनों की शिक्षा और परामर्श इन 'पतरे की पाटियों' का काम देती हैं। यदि कोई युवक पर्वाह न करके अपने जीवन-यान को व्यर्थ ही किसी चट्टान से टकरा दे तो इसका अपराध किस पर है? उसकी गणना मूर्खों में क्यों न की जाय?

खतरे से सावधान !

(१२)

प्यारे बेटे !

तुम्हारे 'ताऊजी' जब मंसूरी में डाक्टर थे, तुम उस समय छोटे थे, शायद तुम्हें उस समय की बातें याद न रही हों। तुम जब मोटर में देहरादून से मंसूरी गए, तब तुमने जहाँ-तहाँ तख़्तों पर लाल स्याही से 'ख़तरा' लिखा हुआ देखकर उसका मतलब पूछा था। पहाड़ में कितने ही मोड़ खड्डे, ऊबड़-खाबड़ स्थान ऐसे होते हैं जहाँ ज़रासी असावधानी से, ज़रा से हाथ के बहक जाने से मोटर का अपने रास्ते से हट कर किसी खड्डे में गिर जाने अथवा किसी चट्टान से टकरा जाने का ख़तरा रहता है, कभी-कभी मोड़ पर दो मोटरों के—यदि वहाँ सावधानी से न चला जाय तो टकरा जाने की सम्भावना भी रहती है। इसीलिए ऐसे स्थानों पर मोटर ड्राइवरों को सावधान करने के लिए तख़्तों पर पाटियाँ लगा दी जाती हैं, जिस पर लाल चमकती स्याही में 'ख़तरा' लिख दिया जाता है।

मनुष्य के जीवन में भी ऐसे ही अनेक मोड़ और खड्डे आते हैं,

जिनमें तनिक-सी असावधानी—लापरवाही करने से उसका जीवन ही नष्ट हो जाता है। अच्छी अच्छी नीति सम्बन्धी पुस्तकें और गुरुजनों की शिक्षा और परामर्श इन 'ख़तरे की पाटियों' का काम देती हैं। यदि कोई युवक पर्वाह न करके अपने जीवन-यान को व्यर्थ ही किसी चट्टान से टकरा दे तो इसका अपराध किस पर है? उसकी गणना मूर्खों में क्यों न की जाय?

आज अनेक लोगों को तुम चरित्रबल, उन्नतिशील और स्वस्थ देखते हो, और दूसरों को दुश्चरित्र, पतित और रोगी देखते हो। इसका कारण क्या है? क्यों कुछ लोग अच्छे हैं और कुछ लोग बुरे? क्या यह ईश्वरीय विधान है? क्या यह पैतृक देन ही है? यह अनेक मनुष्य जो तुम्हें चोर, डाकू, व्यभिचारी, रोगी दिखलाई पड़ते हैं क्या जन्म से ही वे ऐसे थे? या वे एक दिन में ऐसे बन गए? यदि समय पर उन्हें कोई 'ख़तरे की पाटी' दिखलानेवाला होता और वह उस ख़तरे से सावधान हो जाते तो क्या इनका पतन होता? इसमें से अधिकांश उतने ही भले हो सकते थे जितने अनेक वे मनुष्य जो समाज में 'सज्जन' कहे जाते हैं।

यहाँ कितने ही क़ैदी ऐसे हैं जो खून और कत्ल के अपराध में लम्बी २ मियाद के लिए क़ैद हैं परन्तु उनमें से कितने ही बड़े ईमानदार और भले आदमी हैं। फिर कत्ल या डाके में कैसे शामिल हो गये? यह एक आश्चर्य की बात है। उन्हें ख़तरे की

पाटी दिखलानेवाला कोई न था अथवा बुरी संगत में पड़ कर वे उस 'ख़तरे की पाटी' की तरफ़ से बिलकुल लापरवाह हो गये थे। ज़रा-सी असावधानी ने उनके जीवन का प्रवाह ही बदल दिया।

तुम जिस उमर मे गुज़र रहे हो उसमें अनेक खड्डे, मोड़ पड़ते हैं। अनुभव की कमी के कारण सम्भव है तुम उनसे लापरवाह हो सकते हो। तुम्हें अनेक दुश्चरित्र लड़के ऐसे मिल सकते हैं जो तुम्हें बहकावें और अपने साथ तुम्हें भी ले जाकर खड्डे में गिर जाँय। कुछ पुरुष और स्त्रियाँ भी ऐसी हो सकती हैं जो ऊपर से 'भले' दिखलाई दें पर तुम्हें खड्डे में गिरने का कारण हो जायँ। मैं ऐसे सभी ख़तरों से तुम्हें 'सावधान' कर देना चाहता हूं। मैं जानता हूं, जिस विषय पर मैं तुम्हें लिखना चाहता हूं, प्रायः पिता-पुत्र उस पर बातचीत करने में सङ्कोच करते हैं परन्तु गुरुजन ही यदि उन गड्ढों को दिखाकर सावधान न करें तो कौन करेगा ? यदि इस सम्बन्ध में वे अच्छे हाथों से शिक्षित न होंगे तो बुरे हाथों से उन्हें दीक्षा मिलेगी।

तुमने महाभारत में भीष्म और अर्जुन की कथायें पढ़ी हैं। राम और लक्ष्मण की वीरता पढ़ ? कर तुम सजग हो उठते हो। उस दिन तुमने गुरुकुल के उस ब्रह्मचारी के अद्भुत पराक्रम के खेल देखे थे, उसके सुगठित शरीर, चौड़ी छाती और चमकते हुए नेत्र देख कर तुम फड़क उठे थे। उसकी छाती पर कितने मेडल चमचम चमक रहे थे। यह सब किसका परिणाम है ?

ब्रह्मचर्य का। ब्रह्मचर्य कोई स्वर्ग प्राप्ति ही के लिए आवश्यक नहीं है। भावी-जीवन की नींव ही ब्रह्मचर्य पर कायम होती है, यदि यह नींव कमजोर हो तो इस पर जो भी भवन बनाया जायगा, वह निर्बल होगा। वह ज़रा से आँधी तूफ़ान के धक्के से गिर सकता है।

यह जो तुम मनुष्य का शरीर देखते हो वह चौबीस वर्ष की अवस्था तक पूर्ण परिपक्व अवस्था में पहुँचता है। तुमने कम्पनीवाली कोठी के बाग़ में पेड़ों को बढ़ते हुए देखा होगा, जब वे पौधों की शक्ल में ही हैं, उस समय ही यदि कोई ऐसा कर्म किया जाय जिससे उनकी बढ़ती रुक जाय तो क्या परिणाम होगा? वे सूख कर नष्ट हो जायँगे। हम जो आहार करते हैं उससे रस बनता है, रस से खून और हड्डियाँ बनती हैं और खून से वीर्य बनता है। वीर्य रक्त में उसी तरह ओत-प्रोत रहता है जैसे दूध में मक्खन। यह वीर्य पुनः रक्त में मिलकर हमारे शरीर को पुष्ट करता है। उसकी वृद्धि से हमारे मुख पर ओज और चमक दिखलाई पड़ती है। यदि यही वीर्य खून से पृथक् कर दिया जाय तो मक्खन निकले हुए दूध की तरह निस्तेज हो जायगा। परिपक्व अवस्था पहुँचने से पूर्व तो वीर्य को नष्ट करना बड़ा ही खतरनाक है।

इस पर भी कुछ लड़के बुरी संगत में बैठ कर अपने वीर्य को नष्ट करने की अनेक कुटेव सीख लेते हैं। इससे उनका

सारा भविष्य ही नष्ट हो जाता है। एक बार यदि कोई नवयुवक इन कुटेवों में फँस जाता है तो जिस तरह अफ़ीमची अफ़ीम की आदत के चंगुल में फँस जाता है उसी तरह यह अपने को अधिक और अधिक नष्ट करता जाता है। उसके चेहरे पर पीलापन और आँखों के चारों ओर गड्ढे और कालिमा छाती जाती है। उसे कुछ व्यक्तियों में बैठने या बात करने में लज्जा मालूम होने लगती है। उसे अपने में आत्म-बल की कमी महसूस होने लगती है। उसे भूख कम लगती है और उसकी पाचनशक्ति नष्ट होने लगती है। ऐसे नवयुवकों का जीवन ही नष्ट हो जाता है।

यह आदतें बुरे लड़कों में छूत की तरह फैलती हैं। इसलिए बुरे लड़कों से दूर रहना चाहिए। जो लड़के ऐसी आदतों में पड़ जाते हैं दुर्भाग्य से उन्हें रास्ता दिखलाने वाला कोई नहीं होता, स्वयं उनमें साहस और आत्म-बल की कमी होती है।

हर युवक को 'ख़तरे की पाटी' अपने सामने रखनी चाहिए। १४–१६ वर्ष से लगा कर २४ वर्ष तक ऐसा समय है जब नये २ पर अपरिपक्व विचारों का विकास होता है, इसमें नई २ आदतें

चेतना ने उन्हें अन्तिम समय पर सावधान कर दिया। वे खड्ड में गिरने से बच गये। कौन जानता है यदि वे उस समय सावधान न हुए होते तो किस प्रवाह में बह जाते और आज कहाँ होते ?

तुम पूछ सकते हो जब इन चीज़ों के परिणाम इतने बुरे हैं तब भी युवक इनमें क्यों फँस जाते हैं ? इनमें कुछ तो प्रारम्भिक आकर्षण होता है। यह चीजें युवकों के जीवन में रहस्यमय आवरण के साथ होती हैं और नवयुवक की प्रवृत्तियां ही रहस्यमय चीज़ों में जाने और उनका उद्घाटन करने की होती हैं। नवयुवक इनमें एक रोमान्स की तरह घुसता जाता है पर फिर प्रवाह में बह जाता है, और यह चीज़ें युवकों को इसी तरह फँसा लेती हैं जिस तरह अफीम–अफ़ीमची को, वह तड़फड़ाता है पर अफ़ीम को नहीं छोड़ सकता। इसीलिए 'केवल एक बार' के प्रलोभन में नहीं पड़ना चाहिये।

तुम्हें अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि यदि तुम्हें उच्च बनना है तो तुम्हें अपने जीवन के भवन की स्थापना सदाचार की सबल नींव पर करना चाहिये। ब्रह्मचर्य, अस्तेय (चोरी न करना), सत्य, अहिंसा, त्याग, श्रम, परोपकार यह सात खम्भे हैं।

तुम्हारे जीवन का यह सबसे "सुन्दर और स्वर्णिम" मौसम है। तुमने बहुधा सुना होगा कि इसी मौसम में बीज बोये जाते हैं, और यह ठीक भी है। अगर इस मौसम में तुम कुछ नहीं

बोते या गेहूं के स्थान पर घास-पात बोते हो तो तुम एक सुन्दर भविष्य की कल्पना नहीं कर सकते। अपने आगे जीवन में, जब तुम इन पर एक विहंगम दृष्टि डालोगे, उस समय तुमको इसकी कमी प्रतीत होगी।

अभी तुम्हारा मस्तिष्क इस अवस्था में है कि जब तुम इसे किसी भी ओर ढाल सकते हो लेकिन धीरे २ यह पत्थर या फ़ौलाद का रूप धारण कर लेगा। तुम एक वृद्ध की आदत नहीं बदल सकते, जैसा वह करता आया है, भविष्य में भी वह वही करेगा। इसीलिए अगर तुमने समझ और ईमानदारी से ऐसी भूमि तैयार की जिसमें सद्गुणों के बीज बोये, उसे पानी और खाद देकर पोषित किया, घास और सरपत उखाड़ कर उसे व्यवस्थित रूप दिया तो तुम अपने भावी जीवन को एक ऐसे उद्यान में परिवर्तित कर सकोगे जिसके सौरभ से तुम्हारा जीवन धन्य होगा, सफलता तुम्हारे क़दमों में होगी।

तुम्हारा पिता।

मित्रों का चुनाव

(१६)

प्यारे बेटे,

मित्र ? आह ! दो अक्षरों का शब्द कितना मधुर है । एक नीतिकार ने लिखा है—

> शोकाराति भये त्राणं प्रीति विश्वम्भ भाजमत् ।
> केन रत्नमिदं सृष्टं मित्र मित्यक्षरद्वयम् ॥

शोक, शत्रु, भय इनसे बचानेवाले प्रीति और विश्वास के पात्र किसने 'मित्र' इन दो अक्षरों को बनाया ? यदि कोई मुझसे पूछे "मनुष्यों को पहिचानने का क्या उपाय है ?" तो मैं कहूंगा "तुम उसके मित्रों को मालूम करो कि वे कौन हैं ? वह कैसे वातावरण में उठता बैठता, घूमता है, उससे तुम्हें इसका सही अनुमान हो जायगा कि वह कैसा व्यक्ति है ?"

प्रत्येक मनुष्य को मित्रों की आवश्यकता है । तुम अपने जीवन में कुछ न कुछ व्यक्तियों से अधिक घनिष्टता का अनुभव करोगे । मित्र मनुष्य की सामाजिक आवश्यकता है परन्तु फिर भी ठीक-ठीक मित्रों का चुनाव कर सकना कितना कठिन है—

स्वाभाविकं तु यन्मित्रं भाग्ये नैवाभि जायते ।
तद् कृत्रिम सौहार्द मा पत्स्वति न मुन्चति ॥

जो स्वाभाविक मित्र है सो भाग्य ही से मिलता है और वह अकृत्रिम मित्रता को आपत्ति में भी नहीं छोड़ता ।

आजकल यहाँ मच्छरों का बड़ा प्रकोप है । कल रात को बड़ी कठिनाई से नींद आई । जब ज़रा नींद आती थी तभी श्रीमान् मच्छरजी महाराज कान के पास अपना तम्बूरा लेकर 'भन-भन' सुन्दर सङ्गीत को सुनाने पहुँच जाते और मौका पाते ही डंक मारकर उड़ जाते थे । मैं हाथ फेंकता पर वह हज़रत कहाँ हाथ आनेवाले हैं ? इन्हीं को लक्ष्य करके किन्हीं संस्कृत के साहित्य-कार ने लिखा है—

प्रक पादयोः पदति खादति प्रष्ठ मांसं ।
कर्णे कलं किमपि रौति शनै विचित्रम् ॥
छिद्र निसत्य सहसा प्रवि शत्य शंकः ।
सर्वं खलस्य चरितं मशकः करोति ॥

अर्थात् खल के पूरे चरित्र को मच्छर प्रगट करता है । पहिले चरण के आगे गिरता है फिर पीठ के मांस को खाता है । कान में कुछ विचित्र और मधुर वचन धीरे-धीरे बोलता है । फिर छिद्र ढूंढ कर झटपट निःशंक होकर बैठ जाता है—

'हीनते सिरनिस्तात हीनें सहसमागत,
सर्वेञ्ज ममतामऐनि विशिष्टैश्च दिशिष्ट नाम ।

हे तात ! नीच लोगों के साथ समागम से मति हीन होती है और समान लोगों के साथ समानता और विशेष लोगों के साथ विशेषता मिलती है।

तुम्हें मित्रों की तो अवश्य खोज है पर क्या तुम ऐसे मनुष्यों को अपना मित्र बनाना पसन्द करोगे जिनमें मच्छर जैसे गुण हों, जो तुम्हारे सामने तो तुम्हारी प्रशंसा करें, तुम्हें अपनी मीठी वाणी से मोहित कर लें पर मौका पाते ही तुम्हारे ऊपर धावा बोल दें ? फिर भी दुनिया में ऐसे मनुष्यों की कमी नहीं है। कुछ स्वार्थी तुम्हें मित्र के नाते घेरने की कोशिश करेंगे, इनसे सावधान रहना चाहिए।

मित्रता क्या है ? दो हृदयों का स्वाभाविक मिलन। मित्र खोजने से नहीं मिलते। किसी स्वार्थ को लेकर जो मित्रता होती है, वह मित्रता नहीं होती। स्वार्थियों की मित्रता तो चपल बिजली की तरह होती है, स्वार्थ सध जाने पर मित्रता भी समाप्त हो जाती है। अनायास ही बिना किसी स्वार्थ के जो हृदयों का मिलन हो जाता है, वही सच्ची मित्रता है।

राजनीतिक क्षेत्र में प्रायः मित्र मिलना कठिन है। वहाँ आज के जो मित्र हैं कल के वही शत्रु होंगे और आज के जो शत्रु हैं कल के वही मित्र होंगे, ऐसा कहा जाता है। परन्तु भारतीय राजनीति में अनेक ऐसे उदाहरण मिलते हैं जहाँ एक मित्र ने दूसरे मित्र के लिए अपने सर्वस्व की आहुति चढ़ा दी।

यदि तुम्हें कुछ अच्छे मित्र मिल जायँ तो इनकी मित्रता की रक्षा बड़े यत्न से करनी चाहिए। वह एक अमूल्यवान् सम्पत्ति से भी अधिक मूल्यवान् है। कभी २ हम अपनी लापरवाही से अपने मित्र को व्यर्थ ही ठेस पहुँचा देते हैं। एक बार हृदयों में अन्तर आ जाने पर उनका जुड़ना बड़ा कठिन हो जाता है।' हमें अपने मित्रों के भावों की रक्षा करनी चाहिए और उनके प्रति कभी उदासीनता नहीं दिखलानी चाहिए! जिन लोगों की मित्रता फुटबॉल की तरह एक स्थान से दूसरे स्थान पर ठोकर खाती फिरती है, उनकी मित्रता का कोई मूल्य नहीं है।

मित्रता में लेन-देन अथवा व्यौपार कभी न कभी मनमुटाव का कारण हो ही जाता है। इसलिए मित्रों में लेन-देन या व्यौपार का कार्य मत करो। हाँ! आवश्यकता पड़ने पर अपने मित्रों की आर्थिक सहायता करना तुम्हारा धर्म है, परन्तु वह सहायता मित्र के नाते होनी चाहिए। तुम्हें आर्थिक सहायता उससे वापिस मिलने अथवा उसका बदला कभी मिलने के विचार से नहीं करना चाहिए। इससे निराश होने पर तुम्हें दुःख भी न होगा। यदि कभी व्यौपार या लेन-देन करना ही पड़े तो वह बिलकुल साफ़ और स्पष्ट होना चाहिए।

तुम्हारे दिल में अपने मित्रों के माता-पिता और उनके परिवार की महिलाओं के प्रति आदर और सम्मान का भाव होना चाहिए। तुम्हें उनके घर की स्त्रियों के प्रति ऐसा ही व्यवहार करना चाहिए जैसा कि तुम स्वयं अपनी माता और बहिनों के प्रति करते हो।

पुराने राजपूत राजाओं में पगड़ी बदलौवल की प्रथा जारी थी। वे एक बार पगड़ी बदल कर जिसके मित्र हो जाते थे अन्तिम समय प्राण रहते तक अपनी मित्रता निबाहते थे। कौन-सी ऐसी आहुति थी जो मित्रता की वेदी पर वे नहीं चढ़ा सकते थे? परन्तु पाश्चात्य ढंग ने राजनीतिक क्षेत्र में अपना रंग चढ़ा लिया है। अब राजनीतिक और व्यापारिक—आर्थिक आधार पर हुई मित्रता बहुत कम ठहर पाती है।

यदि तुम्हें एक सच्चा मित्र मिल जाय तो वह बहुत काफ़ी है और यदि तुम्हें दो-चार सच्चे मित्र मिल जायें तो फिर तुम जैसा भाग्यशाली दुनिया में कौन हो सकता है? मित्रों के चुनाव में बड़े सतर्क रहो। बुरे मनुष्यों का संग आग के ताप से भी अधिक दह-काने वाला होता है, उससे बचो। हरेक को अपना मित्र मत समझ बैठो।

तुम जितने महापुरुषों को देखोगे तुम्हें मालूम होगा कि वे मनुष्यों के पहिचानने में बड़े निपुण होते हैं। उनके मित्रों और सहयोगियों का चुनाव ही उनकी सफलता का कारण होता है। बुरे और तीसरी श्रेणी के मनुष्यों को लेकर दुनिया में किसने विजय प्राप्त की है?

बहुत बड़े और धनी आदमियों के पीछे मित्रता के लिए घूमना व्यर्थ है, वे अपने 'बड़प्पन' में इतने मग़रूर हैं कि समान आधार पर उनसे मित्रता होना कठिन है। धन मित्रता का वाञ्छनीय आधार तो नहीं हो सकता। प्रायः समान परिस्थितियों के साथियों से मित्रता अधिक अच्छी और दृढ़ होती है।

यदि तुम्हें कुछ अच्छे मित्र मिल जायँ तो इनकी मित्रता की रक्षा बडे यत्न से करनी चाहिए। वह एक अमूल्यवान् सम्पत्ति से भी अधिक मूल्यवान् है। कभी २ हम अपनी लापरवाही से अपने मित्र को व्यर्थ ही ठेस पहुँचा देते हैं। एक बार हृदयों में अन्तर आ जाने पर उनका जुड़ना बड़ा कठिन हो जाता है। हमें अपने मित्रों के भावों की रक्षा करनी चाहिए और उनके प्रति कभी उदासीनता नहीं दिखलानी चाहिए! जिन लोगों की मित्रता फुटबॉल की तरह एक स्थान से दूसरे स्थान पर ठोकर खाती फिरती है, उनकी मित्रता का कोई मूल्य नहीं है।

मित्रता में लेन-देन अथवा व्यौपार कभी न कभी मनमुटाव का कारण हो ही जाता है। इसलिए मित्रों में लेन-देन या व्यौपार का कार्य मत करो। हाँ! आवश्यकता पड़ने पर अपने मित्रों की आर्थिक सहायता करना तुम्हारा धर्म है, परन्तु वह सहायता मित्र के नाते होनी चाहिए। तुम्हें आर्थिक सहायता उससे वापिस मिलने अथवा उसका बदला कभी मिलने के विचार से नहीं करना चाहिए। इससे निराश होने पर तुम्हें दुःख भी न होगा। यदि कभी व्यौपार या लेन-देन करना ही पड़े तो वह बिलकुल साफ़ और स्पष्ट होना चाहिए।

तुम्हारे दिल में अपने मित्रों के माता-पिता और उनके परिवार की महिलाओं के प्रति आदर और सम्मान का भाव होना चाहिए। तुम्हें उनके घर की स्त्रियों के प्रति ऐसा ही व्यवहार करना चाहिए जैसा कि तुम स्वयं अपनी माता और बहिनों के प्रति करते हो।

मित्रों से सीधा और सरल व्यवहार रक्खो। बनावट और कृत्रिमता शीघ्र ही खुल जाती है और फिर उसकी प्रतिक्रिया होती है। कभी अपने मित्रों पर बड़प्पन या धन का रौब ग़ालिब करने की कोशिश मत करो।

अपने मित्रों की कठिन परिस्थितियों में सहायता करना तुम्हारा धर्म है। समय पर जो अपने मित्रों के आड़े नहीं आता उस मित्रता को क्या कहें ? एक अँग्रेज़ी कहावत है A friend in need is a friend indeed (जो मित्र आवश्यकता के समय काम आता है वही सच्चा मित्र है) कृष्ण अपने मित्र अर्जुन का रथ हाँकना जैसा छोटा काम करने से पीछे नहीं हटे। सुदामा और कृष्ण की कथा तो तुमने सुनी होगी। सुदामा बहुत ग़रीब ब्राह्मण थे पर कृष्ण के बचपन के लँगोटिया यार थे ? धनाभाव से अत्यन्त दुःखी होने पर उनकी स्त्री ने उन्हें कृष्ण के पास जाने को विवश किया। ऐसे सुदामा के आने का समाचार जब कृष्ण को मालूम हुआ तो वे उन्हें लेने के लिए नंगे पैरों दौड़े। उनकी पटरानियों ने उन्हें स्नान कराये और स्वय उन्होंने उनके पैर धोकर पान किया। इन्हीं सुदामा के लिए कृष्ण ने सुदामापुरी का निर्माण किया। मित्रता का इससे अधिक उत्कर्ष उदाहरण और कहाँ मिलेगा ? नहीं तो कहाँ कृष्ण और कहाँ 'बापुरो सुदामा'।

तुम्हारा पिता।

पुस्तक और पत्रों का चुनाव

(१७)

प्यारे बेटे,

क्या तुमने लन्दन की "ब्रिटिश म्यूज़ियम लायब्रेरी" की बाबत कुछ पढ़ा है ? यह ब्रिटिश साम्राज्य का सबसे बड़ा पुस्तकालय है, यह मीलों वर्गक्षेत्र में फैला हुआ है और इसमें पचासियों भाषाओं की लाखों पुस्तकें हैं। वहाँ बड़े-बड़े विद्वान् जाकर भिन्न-भिन्न विषयों का अध्ययन करते हैं। उनके लिये वहाँ अनेक सुविधाओं की व्यवस्था है। कलकत्ते में भी एक बहुत बड़ा पुस्तकालय है, उसकी पुस्तकों की सूची २० मोटी पुस्तकों में प्रकाशित हुई है। हिन्दी साहित्य का विकास हो रहा है, परन्तु उसमें न तो इतनी पुस्तकें हीं हैं और न कोई ऐसा पुस्तकालय है, जहाँ हिन्दी साहित्य का पूर्ण संग्रह हो। काशी में नागरी प्रचारिणी सभा का अच्छा संग्रह है। संस्कृत का साहित्य बहुत विशाल है। हज़ारों वर्ष की हमारी इस पैतृक सम्पत्ति में अब भी ऐसे अनमोल हीरे छिपे हैं जो किसी अन्य भाषा में नहीं हैं। आज भी सहस्रों और लाखों भी—संस्कृत

और पाली भाषाओं के ताम्र-पत्र और हस्तलिखित पुस्तकें हमारे देश में इधर-उधर फैली हुई हैं, जिनका स्वरक्षित संग्रह करके कुछ स्थानों पर केन्द्रीयकरण करने की बड़ी आवश्यकता है। हमारी हज़ारों संस्कृत और पाली भाषा की पुस्तकें जर्मनी, इङ्गलैण्ड, अमरीका, तिब्बत, चीन, जापान में चली गई हैं। जर्मनी ने तो हमारी कितनी ही पुस्तकों को अपने यहाँ से प्रकाशित किया है और उनके वे संस्करण बड़े शुद्ध और प्रमाणित माने जाते हैं।

विभिन्न भाषाओं का इतना विशाल साहित्य ? इसे कोई यदि पढ़ने बैठे और जीवन भर निरन्तर पढ़ता ही रहे, यदि वह दो-सौ पृष्ठ प्रति दिन भी पढ़े तो अपने जीवन में वह पाँच-सात हज़ार पुस्तकों से ज्यादा नहीं पढ़ सकता। हमारी शक्तियाँ कितनी परिमित हैं ? जीवन भर व्यतीत कर देने पर भी हम लन्दन के पुस्तकालय का एक कोना भी नहीं पढ़ सकते।

मुद्रणकला के प्रचार से अधिकाधिक पुस्तकें छप रही हैं, अँग्रेज़ी में हर विषय की सैकड़ों और हज़ारों पुस्तकें छप चुकी हैं। हिन्दी में बीमा विषय की कोई उपयुक्त पुस्तक मेरी दृष्टि में नहीं आई पर अँग्रेज़ी में इस विषय की हज़ारों ही पुस्तकें हैं। हर प्रवृत्ति, हर व्यवसाय की वहाँ ढेरों पुस्तकें हैं। विज्ञान, कला, साहित्य, व्यौपार अर्थशास्त्र, राजनीति, इतिहास, भूगोल, भू-गर्भ, गृह-निर्माण, यात्र आदि सैकड़ों विषयों की पुस्तकें छप चुकी हैं। हिन्दी साहित्य में भी अब पुस्तकों की संख्या बढ़ रही है, इनमें अच्छी भी हैं, बुरी भी हैं कुछ पुस्तकें उपयुक्त व्यक्तियों द्वारा लिखी गई हैं और कुछ अन

धिकारी व्यक्रियों ने भी पुस्तकें लिखकर छपा दी हैं। कुछ समय हुआ साहित्य शौक़ और यश की वस्तु बन गया था। कुछ लोग यश कमाने और शौक़ के लिये पुस्तकें लिखते थे। हर मनुष्य में दूसरों को उपदेश करने की एक कमज़ोरी होती है और अब तो साहित्य व्यवसाय की चीज़ बन गया है। आय और जीविका के लिये पुस्तकें लिखना इस युग की देन है। पैसा कमाने के लिये पुस्तकें लिखवाई जाती हैं और छापी जाती हैं। दुनिया मे कोई भी चीज़ बिलकुल अच्छी या बिलकुल ख़राब नहीं है। मुद्रण-कला का भी अपने गुण और दोषों सहित विकास हो रहा है।

पुस्तकों की तरह योरप और अमरीका में हर विषय के पत्र और पत्रिकाएं भी निकलती हैं। इनके बड़े सगठन हैं और इनमें से अनेकों की तो ग्राहक सख्या लाखों में पहुँचती है। यह पत्र पत्रिकाएँ भी व्यवसाय के आधार पर निकाली जाती हैं। आजकल की दुनिया में समाचार पत्रों की एक बड़ी शक्ति है, उनके ज़रा से इशारे से बड़ी-बड़ी सरकारों के तख्ते पलट जाते हैं। अनेक दूसरे व्यवसायों की तरह आज इन पत्रों के मालिक भी विशाल सम्पत्ति के स्वामी बन गये हैं।

जब हम पुस्तक और पत्रों के इस अपरिमित प्रवाह को देखते हैं तो हमारा दिमाग परेशान हो जाता है कि हम क्या पढ़े? इनमें से अनेक पुस्तकें और पत्र तो इतने गन्दे होते हैं कि उनके कीटाणु मस्तिष्क में प्रवेश कर हमारे जीवन को ही नष्ट कर देते हैं। इनमें

से कुछ तो नैतिकता से बहुत दूर होती हैं, बुरे विचारों को उत्तेजना देना, पैसे ऐंठना ही इनका काम होता है। अनेक मासिक पत्र ऐसे प्रकाशित होते हैं जिनमें गन्दे और अश्लील चित्र छाप कर लोगों की दुष्प्रवृत्तियों को जाग्रत करके उनमें अफीम की तरह चिपक जाना ही उनका काम होता है। ये भीतर ही भीतर समाज की शक्तियों को खाकर उसे खोखला कर देते हैं।

जो पुस्तक सामने आवे उसको ही पढ़ने लगना एक प्रथम श्रेणी की बेवकूफी है। आजकल नवयुवकों में कहानियों और गन्दे उपन्यासों का बड़ा प्रचार है। नवयुवकों का उनमें चित्त लगता भी खूब है। हर स्टेशन के स्टाल पर ऐसी ही तीसरी श्रेणी की पुस्तकें भरी पड़ी हैं। यह समाज के लिए विष है।

तुम्हें पुस्तकें पढ़ने का तो बहुत शौक़ है, तुमने लड़कों के लिये एक बार पुस्तकालय भी खोला था पर कभी तुमने यह भी सोचा कि कैसी पुस्तकें पढ़नी चाहिये। पुस्तकें एक मनुष्य की सबसे अच्छी मित्र हैं और पत्रों के बिना आज किसी मनुष्य का ज्ञान पूर्ण नहीं कहा जा सकता। इनका पढ़ना जितना आवश्यक है उतना ही इनका चुनाव कठिन है। तुम्हें चाहिये कि इस सम्बन्ध में अपनी एक योजना बनाओ। इसमें तुम्हें अनुभवी और विद्वान् व्यक्तियों से सहायता लेनी चाहिये। जिस विषय में तुम्हारा झुकाव हो उस विषय के अच्छे विद्वानों से परामर्श करके पुस्तकों का चुनाव करना चाहिये।

स्मरण रक्खो, संसार केवल पुस्तकें पढ़ने के लिये ही नहीं है। संसार कर्म-क्षेत्र है और पुस्तकें उसमें मार्ग-प्रदर्शन का काम कर सकती हैं। किताबी कीड़े दुनिया में क्या कर सकते हैं ? परन्तु फिर भी जीवन का ऐसा कौनसा भाग है जब हम पुस्तकें पढ़े बिना रह सकते हैं ? हमें जीवन के अन्तिम पल तक कुछ न कुछ पढ़ते रहना चाहिये। हम अपने जीवन में बहुत कम पुस्तकें पढ़ सकते हैं। इस लिये हमें केवल प्रथम श्रेणी की पुस्तकें ही पढ़ना चाहिये।

हर व्यक्ति के पास अपना एक छोटा पुस्तकालय होना आवश्यक है। उसमें उसे अपनी अत्यन्त प्रिय और आवश्यक पुस्तकें चुन-चुन कर रखना चाहिये। हम प्राय. पुस्तकें तो बहुत खरीदते हैं पर उनको अच्छी तरह नहीं रखते। पुस्तकें प्राय उधार नहीं देना चाहिये और अगर दें तो समय पर उन्हें वापिस मँगा लेना चाहिये। स्वयं भी यदि कोई पुस्तक किसी मित्र से माँगो तो समय पर ही सावधानी से वापिस कर दो। भारतवासी इस सम्बन्ध में बड़े लापरवाह होते हैं परन्तु यह अच्छी आदत नहीं है।

पुस्तक ठीक तरह उपयुक्त स्थान पर और संख्याबद्ध करके रखना चाहिए। उसकी सूची अवश्य बनाकर रक्खो और किसी को कोई भी पुस्तक उधार दो तो एक कापी पर नोट करलो। पुस्तकों की समय समय पर मरम्मत करना आवश्यक है। यह ध्यान रक्खो कहीं उनमें कीटाणु लगकर उन्हें न खा जाँय। कुछ अच्छे पत्र एक दो-मँगाना भी आवश्यक है। समय पर उनकी जिल्द बँधवा कर फ़ाइल बनवा लेनी चाहिए।

परन्तु तुम सारी आवश्यक पुस्तकें और पत्रिकाएँ नहीं ख़रीद सकते। इसके लिए तुम्हें किसी पुस्तकालय का सदस्य बन जाना चाहिए। कुछ पुस्तकालय बाहर भी पुस्तकें भेजते हैं। जैसे कलकत्ते का पुस्तकालय। इनके नियम मँगा कर पढ़ने चाहिए और आवश्यक हो तो इनका सदस्य बन जाना चाहिए।

पुस्तकों को हम कई श्रेणियों में बाँट सकते हैं। कुछ पुस्तकें केवल सरसरी तौर पर पढ़े जाने की ही होती हैं, कुछ पुस्तकें ध्यान से पढ़ने और समझने की होती हैं और कुछ पुस्तकें बार-बार पढ़कर मनन करने, स्मरण करने और हज़म करने की होती हैं। कुछ पुस्तकें एक बार पढ़ने के बाद व्यर्थ हो जाती हैं परन्तु कुछ पुस्तकें ऐसी भी हो सकती हैं जो सदैव अपने पास रखने और समय-समय पर आवश्यक चीज़ों को देखने की होती हैं। कुछ पुस्तकें पाठ करने की होती हैं।

पुस्तकों और पत्रों का चुनाव और योजना बनाने के बाद प्रश्न यह उठता है कि हम उनका अच्छी से अच्छी प्रकार उपयोग किस तरह कर सकते हैं। विद्यार्थी काल में तो हम अधिक समय पुस्तकों के अध्ययन में बिता ही सकते हैं, व्यावहारिक जीवन में प्रवेश कर जाने पर भी हमें प्रति दिन कुछ न कुछ समय अवश्य व्यय करना चाहिए। यदि पुस्तकों, समाचार-पत्रों और पत्रिकाओं के पढ़ने में यदि हम दो घन्टे प्रति दिन व्यय करें तो वह हमारे निरन्तर विकास के लिए पर्याप्त है। इतना समय प्रति दिन यदि हम

पुस्तक अध्ययन में व्यतीत करें तो हम एक साधारण बड़ी पुस्तक एक सप्ताह में पढ़ लेंगे। चार पुस्तकें प्रति मास बहुत पर्याप्त हैं।

जो पुस्तकें केवल हलके वाचन के लिए होती हैं जैसे कहानियाँ, उपन्यास, यात्राओं के वर्णन आदि शीघ्र पढ़ कर छोड़ दिए जाते हैं परन्तु जो मनन करने योग्य पुस्तकें हैं उन्हें ध्यान से पढ़ने की आवश्यकता होती है। प्रायः यह देखा जाता है कुछ लोग पढ़ते तो हैं पर उनमें हज़म करने की शक्ति बहुत कम होती है। पुस्तक पढ़ने के बाद फ़िर मस्तिष्क स्लेट की तरह धुल जाता है। ऐसे पढ़ने से क्या लाभ!

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक प्रोफेसर कार्ल शोर का मत है "साधारण मनुष्य अपनी यथार्थ प्राप्त स्मरण-शक्ति का दस प्रतिशत से अधिक कार्य में नहीं लाता। वह स्मरण करने के स्वाभाविक नियमों की अवहेलना कर उसका ६० प्रतिशत व्यर्थ कर देता है।"

स्मरण करने के दो स्वाभाविक नियम हैं (१) मस्तिष्क पर हम जो पढ़ते हैं उनका अङ्कन, (२) उसका दोहराना और उसका क्रम-बद्ध करना। हम जो चीज़ पढ़ते हैं वह पीछे हमारे दिमाग़ पर अंकित होती है। जब हम उन बातों को स्मरण करते हैं तो हम उनके अङ्कित शब्दों को दोहराते हैं और हमारा मस्तिष्क उनको क्रम-बद्ध करके हमारे सम्मुख उपस्थित कर देता है।

स्मरण शक्ति को बढ़ाने का सबसे प्रथम नियम यह है कि जिन वस्तुओं को स्मरण रखना चाहते हैं, उनको मस्तिष्क पर

तरह अङ्कित कर लें यानी उनको ध्यान से पढ़ें। अमरीका के प्रेसीडेण्ट रुज़वेल्ट का नाम तो तुमने सुना है। आजकल जो रुज़वेल्ट प्रेसीडेण्ट हैं उनसे एक दूसरे रुज़वेल्ट भी प्रेसीडेण्ट हो चुके हैं। उनकी स्मरण-शक्ति का रहस्य ही यह था कि वे जिस चीज़ को स्मरण रखना चाहते थे उस बात की ओर वे अपना ध्यान केन्द्रित कर देते थे। जिस दृश्य को तुम स्मरण रखना चाहते हो उसे ध्यान से देखो। किसी भी कमरे में, यदि उसके लेन्स को पूरी तरह केन्द्रित नहीं किया जायगा तो तस्वीर साफ़ नहीं आयगी। इस तरह मस्तिष्क के कमरे में उस दृश्य का फ़ोटो स्पष्ट अङ्कित न होगा, यदि उसे ध्यान से न देखा जाय। बहुत-सी चीज़ें हमारे सामने आने पर भी यदि हमारा ध्यान दूसरी ओर हो तो हम उन्हें नहीं देखते क्योंकि उधर हमारे दिमाग़ के कैमरे में फ़ोकस ही नहीं आता इसी तरह जो चीज़ें सरसरी तौर पर देखी जाती हैं वे भी अपना अक्स बहुत क्षणिक छोड़ जाती हैं।

स्मरण रखने का एक और नियम है कि जो बात याद रखना चाहते हो वह एक से अधिक इन्द्रियों से उन्हें याद करो। जैसे ज़ोर-ज़ोर से पुस्तक पढ़ने से न केवल नेत्र वरन् कर्णेन्द्रिय पर भी उनका असर पड़ता है। अमरीका का एक महापुरुष जिस बात को याद रखना चाहता था वह उसे ज़ोर २ से पढ़ता था ताकि नेत्रों के अतिरिक्त कर्णेन्द्रिय द्वारा भी उसको ग्रहण कर सके।

जो चीज़ तुम देखते हो, सुनने से मस्तिष्क को अधिक

होती है। सुनने से देखनेवाली वस्तु बीस गुनी अधिक याद रहती है।

स्मरण-शक्ति का दूसरा नियम है उसे कई बार दोहराओ। एक बार जिसको पढ़ने से हलका निशान पड़ता है वही बार-बार पढ़ने से उसके मस्तिष्क पर चिह्न स्पष्ट और स्थायी हो जाते हैं। जिस बात को तुम मुँह जबानी याद रखना चाहते हो उसे दस दस दफ़ा तीन दिन ध्यान से पढ़ो। साधारण स्मरण-शक्ति वाले को भी इसी तरह तीस बार पढ़ने से वह वाक्य या श्लोक जबानी याद हो जायगा। रटने से पहले यह पद्धति अच्छी है।

स्मरण करने की तीसरी क्रिया क्रम-बद्ध करना है। हमारे मस्तिष्क में हज़ारों घटनाओं और दृश्यों के चित्र अङ्कित हैं, उनको क्रमबद्ध करके फिर दोहराना ही तीसरा नियम है। इसके उचित विकास के लिए जब तुम स्मरण करो तो उसे अच्छी तरह समझलो। ऐसा क्यों है? यह ऐसा कब है? ऐसा कहाँ है? किसने कहा कि ऐसा है? आदि इस तरह तुम्हारे मस्तिष्क में वह घटना बड़े क्रम से अङ्कित होगी और क्रम से ही तुम उसे दोहरा सकोगे।

तारीख और वर्ष स्मरण रखना बड़ा कठिन होता है। परन्तु तुम्हारे जीवन में अनेक घटनायें ऐसी होती हैं जिनकी तारीखें तुम्हें स्वयम् अनायास ही याद रह जाती हैं। इसी तरह राष्ट्र के जीवन में भी कुछ तारीखें ऐसे होती हैं जिन्हें याद करने

के लिए परिश्रम नहीं करना पड़ता, जैसे जलयान-याला याग का हृदयफांट १२ अप्रैल सन् १९११ को हुआ, वर्त्तमान विश्व युद्ध सितम्बर सन् १९३९ को प्रारम्भ हुआ, पर अन्य दूसरी घटनाओं की तिथि तुम इस तरह याद नहीं रख पाते. परन्तु यदि तुम इन कम महत्वपूर्ण घटनाओं को इन अधिक महत्वपूर्ण घटनाओं से जोड़ लो तो तुम्हें इनकी तारीखें बड़ी जल्दी याद हो जाँयगी। जैसे विश्वयुद्ध छिड़ने के पाँच दिन बाद तुम देहली गए तो तुम्हें मालूम करते देर न लगेगी कि उस दिन सितम्बर सन् १९३९ था जब तुम देहली गए थे।

अन्त में मैं तुम्हें यह याद दिला देना आवश्यक समझता हूँ कि केवल पुस्तकें पढ़ने से या अधिकतर किताबों के अध्ययन से ही किसी मनुष्य के चरित्र का निर्माण नहीं होता है। प्रत्येक मनुष्य को जो भी काम उसके जिम्मे हो, विश्वास और अविकल परिश्रम से करना चाहिए। तुम्हारा भी यही कर्त्तव्य है और तुम्हें सदैव सिपाही की भाँति कठिन परिस्थितियों का सामना करना है। एक आदमी पढ़ने से अधिक काम करके कुशल बनता है। लेकिन वह आदमी सबसे चतुर और कुशल होते हैं जो इन दोनों की सहायता से आगे बढ़ते हैं। याद रक्खो! कि इस दुनिया में वही व्यक्ति उन्नति कर सकता है जो अपने नियत काम को मेहनत और दिलेरी से करता है और भविष्य में महान कार्य करने की पृष्ठ-भूमि निर्मित करता है।

तुम्हारा पिता।

हमारा पारिवारिक जीवन

(१८)

प्यारे बेटे,

तुमने किसी अजायबघर में कभी कोई बनमानुष देखा है। चिम्पेञ्जी और गुरिल्ला इनकी दो जातियाँ अफ्रीका के जगलों में पाई जाती हैं। यदि तुम कभी उन जगलों में पहुंच जाओ और उनके पारिवारिक जीवन को देखो तो तुम्हें मालूम होगा कि वह बड़ा ही सुखी और आनन्दमय है। वे जोड़ा मिलाकर रहते हैं और अपने बच्चों की रक्षा मनुष्यों की तरह ही बड़े होने तक करते हैं। वे पेड़ों की डालियों को झुकाकर एक चबूतरा सा बना लेते हैं। जिस पर वे पत्तों और नरम डालियों से एक शय्या बना लेते है। इस पर माता अपने बच्चों सहित विश्राम करती है और नर गुरिल्ला पेड के नीचे भूमि पर झाड़ झखाड़ इकट्ठा करके उस पर बैठा रहता है और रात के समय वह अपने परिवार की चौकीदारी करता है। यदि जरा भी खटका हो तो

पुस्तक है, जिसका पारिवारिक जीवन का सा उच्च आदर्श हमें संसार की किसी भी पुस्तक या जीवन चरित्र में नहीं मिलता। इस पुस्तक के सभी पात्र राम, लक्ष्मण, भरत, कौशल्या, सीता, हनुमान आदर्श व्यक्ति हैं। राम जैसा आज्ञाकारी पुत्र संसार के इतिहास में दूसरा कहाँ है जो पिता की आज्ञा के लिये चक्रवर्ती राज्य को लात मार देता? यदि वह मुग़ल सम्राट् औरङ्गजेब होता या इङ्गलैण्ड का बादशाह चार्ल्स होता तो कहता "मैं ज्येष्ठ पुत्र हूँ, राजा होने का अधिकार मेरा है, पिता दशरथ होते कौन हैं? अगर वह विषयान्ध होकर यह अनीति करने को तत्पर हुए हैं तो मैं उन्हें शाही क़ैदखाने में बन्द कर उनका दिमाग़ दुरुस्त कर दूँगा।" लक्ष्मण झटपट राजा दशरथ को बध करके भी राज्य को अपने वश में करने की सम्मति देते हैं पर राम यही कहते हैं "हे लक्ष्मण, तुम्हारे स्नेह को मैं जानता हूं। इस अनार्य वृत्ति को दूर करो"।

सीता जैसी पति-परायणा, पवित्र और पतिव्रता पत्नी विश्व के इतिहास में और दूसरी कौन है? वह पति के साथ २ राजपाट छोड़ कर जंगल २ ख़ाक छानती फिरती हैं और कहती हैं 'जहाँ देव हैं, वहीं मुझे सुख है, वहीं सम्पत्ति है।' चौदह वर्ष वनवास की अत्यन्त कठिन यन्त्रणाओं को सह कर भी वे जब लौट कर आती हैं और राम का राज्याभिषेक होता है तो कुछ दिनों बाद प्रजा के अपवाद के भय से फिर से उन्हें जंगल में वाल्मीकि के आश्रम

आक्रमण करने के लिए प्रस्तुत रहता है। ब्रिटेन के एक शिकारी ने लिखा है कि इनमें सन्तान प्रेम के अतिरिक्त और भी ऐसी बातें हैं कि जिनमें से बहुत कुछ हमारे ही समान हैं। एक समय यह शिकारी अपने साथियों के साथ गोरिल्लों के एक परिवार के सामने आ पड़ा। इन्हें देख कर एक बूढ़े सफेद बाल वाले नर गोरिल्ला को छोड़ कर बाकी सब प्राणी भाग गये। गोरिल्लों का यह वृद्ध सरदार भागने वालों को बचाने की इच्छा से शिकारियों का विरोध करने को आगे बढ़ा और वीरता से तब तक सामना करता रहा जब तक कि यह उनकी बन्दूक की गोली का निशाना न बन गया। मनुष्य के सर्वोच्च गुण या विशेषताओं—प्रेम, लगन और साहस का इससे बढ़ कर और कौन सा उदाहरण हो सकता है ?

(हिन्दू विश्व भारती)

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और प्रारम्भ ही से सहयोग और पारिवारिक जीवन पर ही उसकी उन्नति का आधार स्थापित हुआ है। विकास वादियों का कहना है कि मनुष्य जब जंगली अवस्था में घूमता था तभी उसमें पारिवारिक जीवन के अंकुर जग चुके थे और पारिवारिक जीवन का वृक्ष फूलते फलते हमें वर्त्तमान आधुनिक सभ्यता के युग में ले आया है।

आर्य सभ्यता में पारिवारिक जीवन का आदर्श पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र ने हमारे सामने रक्खा है। रामायण एक ऐसी

पुस्तक है, जिसका पारिवारिक जीवन का सा उच्च आदर्श हमें संसार की किसी भी पुस्तक या जीवन चरित्र में नहीं मिलता। इस पुस्तक के सभी पात्र राम, लक्ष्मण, भरत, कौशल्या, सीता, हनूमान आदर्श व्यक्ति हैं। राम जैसा आज्ञाकारी पुत्र संसार के इतिहास में दूसरा कहाँ है जो पिता की आज्ञा के लिये चक्रवर्ती राज्य को लात मार देता? यदि वह मुग़ल सम्राट् औरङ्गजेब होता या इङ्गलैण्ड का बादशाह चार्ल्स होता तो कहता "मैं ज्येष्ठ पुत्र हूं, राजा होने का अधिकार मेरा है, पिता दशरथ होते कौन हैं? अगर वह विषयान्ध होकर यह अनीति करने को तत्पर हुए हैं तो मैं उन्हें शाही क़ैदखाने में बन्द कर उनका दिमाग़ दुरुस्त कर दूँगा।" लक्ष्मण झटपट राजा दशरथ को वध करके भी राज्य को अपने वश में करने की सम्मति देते हैं पर राम यही कहते हैं "हे लक्ष्मण, तुम्हारे स्नेह को मैं जानता हूं। इस अनार्य वृत्ति को दूर करो"।

सीता जैसी पति-परायण, पवित्र और पतिव्रता पत्नी विश्व के इतिहास में और दूसरी कौन है? वह पति के साथ २ राजपाट छोड़ कर जंगल २ ख़ाक छानती फिरती हैं और कहती हैं 'जहाँ देव हैं, वहीं मुझे सुख है, वहीं सम्पत्ति है।' चौदह वर्ष बनवास की अत्यन्त कठिन यन्त्रणाओं को सह कर भी वे जब लौट कर आती हैं और राम का राज्याभिषेक होता है तो कुछ दिनों बाद प्रजा के अपवाद के भय से फिर वे उन्हें जंगल में वाल्मीकि के आश्रम